वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६१ अंक ४ अप्रैल २०२३

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६१

अंक ४

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक

स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक

स्वामी पद्माक्षानन्द

वैशाख, सम्वत् २०८०

अप्रैल, २०२३

अनुक्रमणिका

* तुम्हें शंकर का अनुसरण करना चाहिए : विवेकानन्द २२२
* श्रीमाँ सारदा की दैवी करुणा (प्रेमा नन्दकुमार) २२५
* (बच्चों का आंगन) क्रोध से अपना ही नाश (श्रीमती मिताली सिंह) २३०
* श्रीरामकृष्ण का आकर्षण (स्वामी अलोकानन्द) २३१
* (युवा प्रांगण) श्रेयांसि बहुविघ्नानि (स्वामी गुणदानन्द) २३८
* विनोदप्रिय श्रीरामकृष्ण (डॉ. अवधेश प्रधान) २४२
* ज्ञान और भक्ति में अन्तर (डॉ. विजय प्रकाश त्रिपाठी) २४७
* ऐसा विश्वास करो कि मेरी पुकार ईश्वर सुनते ही हैं (स्वामी सत्यरूपानन्द) २५१
* (कविता) आओ आओ रामकृष्ण प्रभु (ओमप्रकाश वर्मा) २४६
* (कविता) हमको दास बना लो (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) २४६
* (कविता) रामकृष्ण प्रभु युग अवतार (रामकुमार गौड़) २४६

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) २२१
पुरखों की थाती २२१
सम्पादकीय २२३
सारगाछी की स्मृतियाँ २२८
गीतातत्त्व-चिन्तन २३५
प्रश्नोपनिषद् २४०
श्रीरामकृष्ण-गीता २४८
आध्यात्मिक जिज्ञासा २४९
रामराज्य का स्वरूप २५२
साधुओं के पावन प्रसंग २५५
समाचार और सूचनाएँ २६२

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)

ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***

आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : रायपुर (छत्तीसगढ़)
अकाउण्ट नम्बर : 1 3 8 5 1 1 6 1 2 4
IFSC : CBIN0280804

अप्रैल माह के जयन्ती और त्यौहार

०४ महावीर जयन्ती
२३ अक्षय तृतीया
२५ श्रीशंकराचार्य
१,१६ एकादशी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर श्रीरामकृष्ण देव का यह मन्दिर, रामकृष्ण मठ, विवेक नगर, अगरतला, त्रिपुरा का है। यह आश्रम १९८९ ई. में रामकृष्ण मठ, बेलूड़ द्वारा अधिग्रहण किया गया।

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५७ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें।

– व्यवस्थापक

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	९,४००/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से

अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६९८. श्री. डी.आर.देवांगन,रायपुरा,रायपुर (छ.ग.)	राजीव गाँधी, शा.उ.मा. शाला, परपोड़ी, जि. बेमेतरा (छ.ग.)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए । आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं । आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है ।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी ।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे । दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा । यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है ।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो । आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं । आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें ।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी । तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है । यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें । आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं । प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा । रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है ।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

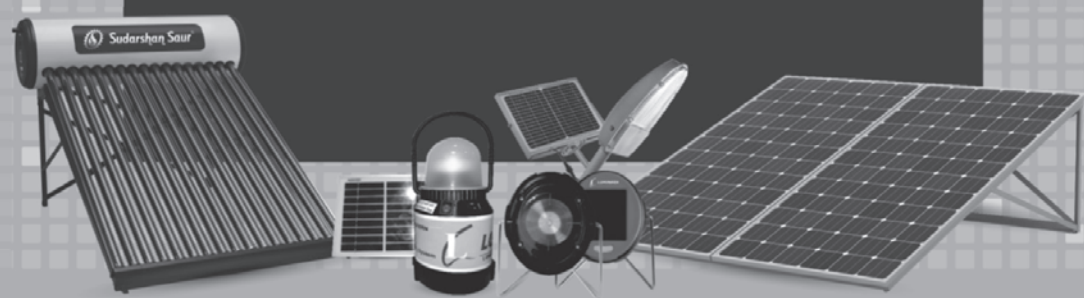

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६१ **अप्रैल २०२३** **अंक ४**

श्रीरामकृष्णमहिमोद्गीतिः

वन्दे पुराणपुरुषं करुणावतारं
प्रेमानुराग-भरिताक्षि-सरोज-युग्मम् ।
भक्तालिलीढ-युगभाव-कदम्ब-सारं
श्रीरामकृष्णमखिलाघ-कुरंग-भंगम् ।।

– जीव के प्रति करुणावश जो धराधाम में अवतीर्ण हुए, जिनके युगल नेत्र-कमल ईश्वर के प्रति प्रेम और अनुराग से परिपूर्ण थे, भक्तरूपी भ्रमरगण जिनके (द्वारा आचरित और उपदिष्ट वर्तमान समय के लिये उपयोगी 'शिवज्ञान से जीवसेवा', 'नारीमात्र 'श्रीजगदम्बा की प्रतिमूर्ति', 'ईश्वर-प्राप्ति ही मानव-जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है', इत्यादि) भावरूपी कदम्ब के फूल का रस (मधु का लेप) पान करते हैं, जो पाप रूपी कुत्सित रंग-समूहों का विलय करनेवाले हैं अथवा उसी प्रकार के हरिण-समूहों का नाश करनेवाले हैं, उन्हीं पुराण पुरुष श्रीरामकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।

पुरखों की थाती

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलश्चैव वासराः।
यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वाक् प्रवर्तते।।७९०।।

– कोयल तब तक मौन रहकर अपने दिन बिताती है, जब तक सभी को आनन्द देनेवाली उसकी मधुर वाणी नहीं फूट पड़ती। (अर्थात कटु बोलने की अपेक्षा मौन रहना अच्छा है।)

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः सः पिता यस्तु पोषकः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः सा भार्या या निर्वृतिः।।७९१।।

– सच्चा पुत्र वही है, जो पिता का आज्ञाकारी हो, सच्चा पिता वही है जो पुत्र का पालन-पोषण करे, सच्चा मित्र वही है जो विश्वासपात्र हो और सच्ची पत्नी वही है जो हृदय को आनन्द प्रदान करे।

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत्।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निःस्नेहान्बान्धवांस्त्यजेत्।।७९२।।

– दयाहीन धर्म को त्याग देना चाहिए, विद्याहीन गुरु को त्याग देना चाहिए, क्रोधी-स्वभाव की पत्नी को त्याग देना चाहिए और स्नेह-रहित बन्धु-बान्धवों को त्याग देना चाहिए।

तुम्हें शंकर का अनुसरण करना चाहिए : विवेकानन्द

* भारत को जीवित रहना ही था, इसीलिए पुनः भगवान का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने कहा था, ''जब कभी धर्म की हानी होती है, तभी मैं आता हूँ।'' वे फिर से आये। इस बार दक्षिण देश में भगवान का आविर्भाव हुआ। उस ब्राह्मण युवक का, जिसके बारे में कहा गया कि उसने सोलह वर्ष की उम्र में ही अपनी सारी ग्रन्थ-रचना समाप्त की थी, उसी अद्भुत प्रतिभाशाली शंकराचार्य का अभ्युदय हुआ। इस सोलह वर्ष के बालक के लेखों से आधुनिक सभ्य संसार विस्मित हो रहा है, वह अद्भुत बालक था। उसने संकल्प किया था कि समग्र भारत को उसके प्राचीन विशुद्ध मार्ग में ले जाऊँगा। पर यह कार्य कितना कठिन और विशाल था, इसका विचार भी करो।

* आचार्य शंकर एक महान तत्त्वज्ञानी थे। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि बौद्ध धर्म का सार तत्त्वतः वेदान्त दर्शन से भिन्न नहीं है।

* शंकराचार्य का गौरव गीता के प्रचार से ही बढ़ा। इस महापुरुष ने अपने महान जीवन में जो बड़े-बड़े कर्म किये, गीता का प्रचार और उसकी एक सुन्दर भाष्य-रचना भी उन्हीं में है और भारत के सनातनमार्गी सम्प्रदाय-संस्थापकों में से हर एक ने उनका अनुगमन किया और तदनुसार गीता पर एक-एक भाष्य की रचना की।

* शंकर की बुद्धि क्षुर-धारा के समान तीक्ष्ण थी। वे विचारक थे और पण्डित भी। उन भगवान शंकराचार्य के सामने संसार का प्रत्येक अद्वैतवादी ऋणी हो मस्तक झुकाता है।

* मुख्यतया इसीलिए श्री शंकराचार्य और उनके मतानुयायी संन्यासियों को उन महान आचार्य बुद्ध के इस विकृत रूप में परिणत उपदेशों को भारत के बाहर निकाल देना पड़ा। फिर से भौतिकता के बादलों से भारत का आकाश ढक गया, अच्छे परिवार के लोग स्वेच्छाचारी और साधारण लोग अन्धविश्वासी हो गये। ऐसे समय में शंकराचार्य ने उठकर फिर से वेदान्त की ज्योति को जगाया। उन्होंने उसका एक युक्तिसंगत, विचारपूर्ण दर्शन के रूप में प्रचार किया।... शंकराचार्य ने उपनिषदों के ज्ञान-भाग पर अधिक जोर दिया। उन्होंने उपनिषदों के सिद्धान्त युक्ति और विचार की कसौटी पर कसकर, प्रणालीबद्ध रूप में लोगों के समक्ष रखे।

* मैं नहीं जानता कि लोग शंकर को अनुदार मत के पोषक क्यों कहते हैं। उनके लिखे ग्रन्थों में ऐसा कुछ भी नहीं मिलता, जो उनकी संकीर्णता का परिचय दे।... शंकराचार्य के उपदेशों पर संकीर्णता का जो दोष लगाया जाता है, सम्भवतः वह उनकी शिक्षा के कारण नहीं, वरन् उनके शिष्यों की अयोग्यता के कारण है।

* इसके बाद महान सुधारक श्रीशंकराचार्य और उनके अनुयायियों का अभ्युदय हुआ। उस समय से आज तक इन कई सौ वर्षों में भारतवर्ष की सर्वसाधारण जनता को धीरे-धीरे उस मौलिक विशुद्ध वेदान्त के धर्म की ओर लाने की चेष्टा की गयी है।

* आचार्य शंकर ने वेदों के सनातन धर्म की पूर्ण रक्षा की। अनेक अनुयायी उन्हें शिव का अवतार मानते हैं। तुम्हें शंकर का अनुसरण करना चाहिए।

सम्पादकीय

भारत माता के प्रेम-पाश में बँधे विवेकानन्द

युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण के लीलासहचरों में प्रमुख सप्तर्षितमंडलागत ऋषि स्वामी विवेकानन्द जी थे। वे श्रीरामकृष्ण के अध्यात्म-सिन्धु से निर्गत अमूल्य रत्न थे, जिनके कृतित्व एवं व्यक्तित्व के आलोक ने सम्पूर्ण विश्व की दिशा दी। उनके जीवन के विभिन्न पक्षों में एक सर्वाधिक सबल पक्ष था उनका 'भारत प्रेम', जो उनके हृदय के अन्तस्तल में दृढ़ता से स्थापित था। भारत का कण-कण उनके लिये पूज्य था। भारतवासी उनके आराध्यदेव थे। अपने अभीष्ट भारतवासी रूपी आराध्यदेव के पूजोपचार में उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

स्वामी विवेकानन्द के लिये भारत केवल भौगोलिक भू-खण्ड मात्र नहीं था। उनके लिये भारत केवल सिन्धु, सरिता, गिरि, गह्वर प्राकृतिक सौन्दर्यसम्पन्न स्थान मात्र नहीं था, अपितु उनके लिये उपरोक्त सर्वसौष्ठव, सर्वगुण, आध्यात्मिकसम्पदासम्पन्न जीवन्त भारत था, जहाँ के वासियों में वे साक्षात् ईश्वर की अनुभूति करते थे। वे कहते थे, 'मैं उन साक्षात् ईश्वर की पूजा करता हूँ, जिन्हें अज्ञानी लोग मनुष्य कहते हैं।''

स्वामीजी ने पराधीन भौतिकता-विपन्न भारतवासियों की दुर्दशा देखकर अपने गुरु श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद भारत का भ्रमण किया और भारतवासियों की दैन्य दशा से परिचित हुये। उन्होंने भारतमाता की मुक्ति हेतु देशवासियों का आह्वान करते हुये कहा –

''आगामी पचास वर्षों के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाये। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क के व्यर्थ के देवी-देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है।[१]

जब एक बार स्वामीजी से जोसेफेन मैक्लाउड ने पूछा कि स्वामीजी मैं आपकी सर्वाधिक सहायता कैसे कर सकती हूँ, तो स्वामीजी ने उत्तर दिया – ''भारत से प्रेम करो।''

भारत के दक्षिणी भाग कन्याकुमारी के समुद्र-तट की समीपस्थ शिला पर बैठकर स्वामीजी ने तीन दिनों तक ध्यान किया। उनके ध्यान का विषय कोई देवी-देवता नहीं, बल्कि भारत था। ध्यान में उन्होंने भारत के गौरवशाली अतीत और उज्ज्वल भविष्य को देखा। भारत के विभिन्न प्रान्तों का भ्रमण कर स्वामीजी ने भारत की वर्तमान दुर्दशा का अवलोकन किया। भारतवासियों की दुर्दशा देखकर उनका हृदय विदीर्ण हो गया। उन्होंने इस दुर्दशा से देशवासियों की उद्धार करने की योजना बनाई। इसके लिये वे अमेरिका भी गये।

स्वामीजी का भारतवासियों हेतु क्रन्दन और माँ से प्रार्थना

विश्वधर्म-सम्मेलन, शिकागो की वह प्रथम महानिशा इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गई। अभूतपूर्व सफलता और अमेरिकावासियों द्वारा किए गए सम्मान के बीच भी यति अपने देशवासियों की वेदना को तनिक भी विस्मृत नहीं कर सका। त्यागी नि:स्पृह संन्यासी सर्वसुविधायुक्त अतिथि-कक्ष में गहन रात्रि में जमीन पर लोटकर क्रन्दन करते हुये माँ से प्रार्थना करते हैं – ''हे माँ ! मैं इस नाम-यश को लेकर क्या करूँ, जबकि मेरे देशवासी घोर निर्धनता में डूबे हुए हैं ! हम गरीब भारतवासी ऐसी दुर्दशा तक पहुँच गए हैं कि मुट्ठी भर अन्न के अभाव में लाखों लोग प्राण त्याग देते हैं और यहाँ लोग अपने व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिये लाखों रुपये खर्च कर देते हैं ! भारत की जनता को कौन उठाएगा? कौन उनके मुख में अन्न देगा? मैं उनकी किस प्रकार सेवा कर सकता हूँ?'' ऐसी विकलता थी भारतवासियों के प्रति स्वामीजी की ! ऐसा अचल गहन प्रेम था स्वामीजी का अपने भारतवासियों के प्रति !

अभिनव भारत के उद्भव की प्रखर परिकल्पना

१९०० में किये गये अपने 'यूरोप यात्रा के संस्मरण' में स्वामी विवेकानन्द ने नवीन भारत के उद्भव का बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं – ''एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, जाली, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से। इन लोगों ने सहस्र-सहस्र वर्षों तक नीरव अत्याचार सहन किया है, उससे पायी है अपूर्व सहिष्णुता। सनातन दुख उठाया, जिससे पायी है अटल

जीवनी शक्ति। ये लोग मुट्ठीभर सत्तू खाकर संसार को उलट दे सकेंगे। आधी रोटी मिली, तो तीनों लोकों में इनका तेज न अटेगा? ये रक्तबीज के प्राणों से युक्त हैं और पाया है सदाचार-बल, जो तीनों लोक में नहीं है। इतनी शान्ति, इतनी प्रीति, इतना प्रेम, मौन रहकर दिन-रात इतना खटना और काम के समय सिंह का विक्रम! अतीत के कंकाल-समूह! यही है तुम्हारे सामने तुम्हारा उत्तराधिकारी भावी भारत ! वे तुम्हारी रत्नपेटिकाएँ, तुम्हारी मणि की अँगूठियाँ, फेंक दो इनके बीच, जितना शीघ्र फेंक सको, फेंक दो और तुम हवा में विलीन हो जाओ, अदृश्य हो जाओ, मात्र कान खड़े रखो। तुम ज्योंही विलीन होगे, उसी समय सुनोगे, कोटिजीमूतस्यन्दिनी, त्रैलोक्य-कम्पनकारिणी भावी भारत की उद्‌बोधन ध्वनि 'वाह गुरु की फतह' !''[२]

भारतवासियों के दुख-दैन्य की वेदना से स्वामीजी का हृदय इतना व्यथित था कि वे दुख प्रकट करते हुये कहते हैं – ''याद रखो कि राष्ट्र झोपड़ी में बसा हुआ है, परन्तु हाय! उन लोगों के लिए कभी किसी ने कुछ किया नहीं।... परन्तु राष्ट्र की भावी उन्नति ... 'सामान्य जनता की अवस्था' पर निर्भर रहती है। क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो? क्या तुम उनका खोया हुआ व्यक्तित्व बिना उनकी स्वाभाविक आध्यात्मिक वृत्ति को नष्ट किये, उन्हें वापस दिला सकते हो? क्या समता, स्वतंत्रता, कार्य-कौशल, पौरुष में तुम पाश्चात्यों के भी गुरु बन सकते हो? क्या तुम उसी के साथ-साथ स्वाभाविक आध्यात्मिक अन्त:प्रेरणा व आध्यात्मिक-साधनाओं में एक कट्टर सनातनी हिन्दू हो सकते हो? यह काम करना है और हम इसे करेंगे ही। तुम सबने इसी के लिए जन्म लिया है। अपने आप पर विश्वास रखो। दृढ़ धारणाएँ महान कार्यों की जननी हैं। हमेशा बढ़ते चलो। मरते दम तक गरीबों और पददलितों के लिए सहानुभूति यही हमारा मन्त्र है।''[३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामीजी भारतवासियों की दीनता मिटाने और उन्हें उनका आत्मसम्मान प्राप्त कराने हेतु योजनाबद्ध ढंग से अपने अनुयायियों के साथ सतत प्रयत्नशील थे। स्वामीजी देशवासियों को उनके कर्तव्यों का स्मरण दिलाते हुये कहते हैं – ''देशभक्त बनो – जिस राष्ट्र ने अतीत में हमारे लिए इतने बड़े-बड़े काम किये हैं, उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय समझो। हे स्वदेशवासियो ! मैं संसार के अन्यान्य राष्ट्रों के साथ-साथ अपने राष्ट्र की जितनी ही अधिक तुलना करता हूँ, उतना ही अधिक तुम लोगों के प्रति मेरा प्रेम बढ़ता जाता है। तुम लोग शुद्ध, शान्त और सत्स्वभाव हो और तुम्हीं लोग सदा अत्याचारों से पीड़ित रहते आये हो, इस मायामय जड़ जगत् की पहेली ही कुछ ऐसी है।''[४] स्वामीजी भारत के जागरण का सूत्र देते हुये कहते हैं – ''भारत तभी जागेगा, जब विशाल हृदयवाले सैकड़ों नर-नारी भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के हित के लिये सचेष्ट होंगे, जो दरिद्रता और मूर्खता के अगाध सागर में निरन्तर डूबते जा रहे हैं।''[५]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था, ''यदि आप भारत को समझना चाहते हैं, तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिये, उनमें सब कुछ सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं है।[६]

स्वामीजी के पाश्चात्य से वापस आने के बाद एक रात स्वामी विज्ञानानन्द जी ने स्वामीजी के कमरे से रोने की आवाज सुनी। वे शीघ्र स्वामीजी के कमरे में गये। उन्होंने देखा कि स्वामीजी रो रहे हैं। उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछने पर स्वामीजी ने कहा – ''ओह ! पेशन !... नहीं भाई, मैं बीमार नहीं हूँ। परन्तु जब तक मेरा देश पीड़ित है, तब तक सो नहीं सकता। मैं रो-रोकर श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना कर रहा था कि वे शीघ्रातिशीघ्र देश की स्थिति सुधार दें।''[७]

स्वामीजी का भारत-प्रेम भगिनी निवेदिता के इन शब्दों से स्पष्ट प्रतिध्वनित होता है – ''भारत ही स्वामीजी का महानतम भाव था। ...भारत ही उनके हृदय में धड़कता था, भारत ही उनकी धमनियों में प्रवाहित होता था। भारत ही उनका दिवास्वप्न था और भारत ही उनकी सनक थी। इतना ही नहीं, वे स्वयं ही भारत बन गये थे। वे भारत की सजीव प्रतिमूर्ति थे। वे स्वयं ही साक्षात् भारत, उसकी आध्यात्मिकता, उसकी पवित्रता, उसकी मेधा, उसकी शक्ति, उसकी अन्तर्दृष्टि तथा उसकी नियति के प्रतीक बन गये थे।''[८] इस प्रकार स्वामीजी के जीवन में भारत-माता के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. विवेकानन्द साहित्य ३/१९३ **२.** वही, ८/१६७-१६८ **३.** वही,२/३२१-२२ **४.** वही,५/९५ **५.** वही, ६/३०७ **६.** मेरा भारत, अमर भारत, पृ. १६८ **७.** वही, पृ.१४९ **८.** वही, पृ १६६

श्रीमाँ सारदा की दैवी करुणा

प्रेमा नन्दकुमार

श्रीअरविंद के अंग्रेजी महाकाव्य सावित्री में एक उद्धरण है, जो हमें श्रीमाँ को हमारे हृदय में विराजित करने में समीचीन प्रतीत होता है : वह किस प्रकार रहीं? कैसा उन्होंने जीवन बिताया? कैसे उन्होंने दूसरों को सुख दिया? कैसे वे उनके लिए अभिभावक माता बनी रहती हैं, जैसे हम उनके लिए, दुख के समय अपने आप रूपान्तरित हो जाते हैं –

''काले बादलों के बीच चंद्र-सा मुख,
उज्ज्वल शुभ्र चमक वस्त्र में बैठी नारी।
उबड़-खाबड़ रेत-मिट्टी उसका खुला आसन था,
उनके पैरों के नीचे नुकीला आहत करनेवाला पत्थर।
जगत् के उच्च शिखर पर दैवी करुणा,
सभी जीवों के दुःख से कातर हुयी चेतना,
वे अन्तःस्थ मन से अवलोकन करती हैं,
बाहर का दूरस्थ दृश्य !
यह बाहरी वस्तुओं का प्रश्नार्थक जगत्''[१]

श्रीमाँ के प्रति श्रीअरविंद जी का यह असीम अत्युत्तम सम्मान था। वास्तव में जब १९०८ में उन्हें गिरफ्तार किया था, तब ब्रिटिश पुलिस द्वारा उनके कलकत्ता निवास की पूरी जाँच की गयी। उन्होंने लिखा है कि पुलिस इंस्पेक्टर को सन्दूक में रखी हुई मिट्टी को देखकर उसे कुछ षड्यन्त्र का संशय हुआ था।

यह मिट्टी दक्षिणेश्वर से लायी हुई पवित्र मिट्टी है, ऐसा कहने के बाद भी, ये बम बनाने में उपयोग में आनेवाली चीज है, इस विचार को सहजता से त्यागने के लिये वह अधिकारी तैयार न था। श्रीअरविंद जी लिखते हैं – वास्तव में, यह रज जागतिक, आध्यात्मिक क्रान्ति की रचना में उपयोगी है, यह इंस्पेक्टर का विचार सही था। श्रीरामकृष्ण और सारदा देवी इसके उद्गम थे। जब श्रीअरविंद अलीपुर बम-काण्ड में अभियोगी होने के कारण जेल में थे, तब उनकी धर्मपत्नी मृणालिनी देवी को श्रीमाँ सारदा ने सांत्वना दी थी – ''मेरी बेटी ! व्याकुल मत होना! तुम्हारा पति ईश्वर के सम्पूर्ण रक्षा-कवच में है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण की कृपा से वह शीघ्र ही निर्दोष सिद्ध होगा। किन्तु वह सांसारिक जीवन की ओर अग्रसर नहीं होगा।''

मृणालिनी देवी को कथित श्रीमाँ के इन शब्दों से मनुष्य श्रीमाँ की बहती हुई करुणा की कल्पना कर सकता है। उन्हें (श्रीमाँ को) पीड़ा क्या होती है, इसका सदैव ज्ञान था, किन्तु वे यह भी जानती थीं कि पीड़ा मनुष्य के शारीरिक रचना को ही स्पर्श करती है, आन्तरिक चेतना को नहीं। इसीलिए वे बिना किसी अनावश्यक काल्पनिक सम्भावना के दूसरों को क्षणभर में सांत्वना दे सकती थीं। श्रीमाँ सारदा ने जो कहा, वह सत्य सिद्ध हुआ। श्रीअरविंद निर्दोष सिद्ध हुए, किन्तु जैसे ही वे (मृणालिनी देवी) पांडेचेरी जाकर श्रीअरविंद का साथ देने की तैयारी में थीं, उनका कोलकता में एक व्याधि से निधन हो गया।

जब उसी दिन शाम को मृणालिनी देवी की माँ, श्रीसारदादेवी के पास गयीं, तो उन्हें सांत्वना के शब्द उनसे (श्रीमाँ सारदा से) मिले। क्योंकि, जिस माता की सन्तान की मृत्यु होती है, उसे सांत्वना देना सरल नहीं होता। जब मृणालिनी देवी की माँ, श्रीमाँ के पास गयीं, तो श्रीमाँ अपनी गंभीर समाधि में थीं, उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और कहने लगीं ...।

''आप आ गयीं? मैं अपने दिव्य दर्शन में देख रही थी... मेरी बहु-मृणालिनी ! वह देवी थी, जो श्राप के परिणामस्वरूप आप की बेटी के रूप में जन्म ली थी। अब उसके कर्म पूरे हो गये, उसकी आत्मा ने प्रस्थान की है।''

यह सनातन धर्म के सार की विवेकपूर्ण उक्ति थी। जो शरीर से निकल गया है, उसके भूत-भविष्य को देखकर उसके लिए दुख नहीं करना चाहिए। किन्तु जब तक आत्मा शरीर में है, तब तक स्व-करुणा (selfpity) में डूबना नहीं

चाहिए। बल्कि दूसरों के दु:ख-कष्ट देखकर उसके समाधान हेतु प्रयत्नशील होना चाहिए।

जैसाकि, हम जीवनभर निरन्तर उद्योगरत रहते हैं। हम प्राचीन कहानी के उस मनुष्य से भिन्न नहीं हैं, जो बाघ पीछे लगने पर कुएँ में कूदता है और कुएँ की दीवार में निकली हुयी शाखाओं को पकड़कर अपनी रक्षा करता है। नीचे एक सर्प पानी पर तैरता हुआ दिखाई देता है। सफेद और काले रंग का चूहा उन शाखाओं को दाँत से काट रहा है। उसी समय हवा के झोंके से मधुमक्खी के छत्ते से कुछ बूँदें नीचे छलकती हैं। कुएँ में गिरा हुआ व्यक्ति, जो इन संकटों से घिरा हुआ है, फिर भी उन कुछ मधु के बूँदों के स्वाद हेतु अपनी जिह्वा को बाहर निकालता है। ठीक ऐसी ही हमारी दशा है। हम भयंकर दृश्यों के आतंक से (रोग, मृत्यु, भ्रष्टाचार, गरीबी, मनुष्य की मनुष्य के प्रति क्रूरता) घिरे होते हुये भी सोचते हैं कि क्षणिक सुख की बहुत थोड़ी बूँदें शाश्वत हैं।

श्रीमाँ सारदा के जीवन की ओर बार-बार अग्रसर होते हुये, हम अपने मन को पुन: स्थापित करते हैं और हम सीखते हैं कि श्रेय क्या निर्माण करता है और प्रेय को समझकर क्या अस्वीकार करना चाहिए। भगवान श्रीरामकृष्ण की माँ काली के रूप में पूजा करना, यह श्रेय का मार्ग उन्होंने निर्देशित किया था। उन्होंने (श्रीरामकृष्ण देव ने) श्रीमाँ की षोडशी पूजा कर, उन्हें वंदन किया था और नियमानुसार प्रणाम मंत्र का उच्चारण किया था। जयरामबाटी के छोटे-से गाँव की लड़की ने इस झटके को द्रुतगति से स्वीकार किया, क्योंकि श्रीमाँ में सनातन धर्म सुन्दर ढंग से समाहित था। नारीत्व बल है, शक्ति है, जो पृथ्वी के जीवन को संजीवित रखने के लिए विविध माध्यमों से प्रस्फुटित होती है। अत: शक्ति के अनन्त रूप हैं और जिस क्षण श्रीरामकृष्ण देव ने सारदादेवी को माँ के रूप में प्रतिष्ठित किया, वे सब की जगजननी श्रीमाँ बन गयीं।

हम माँ के जीवन की ओर पुन: वापस आकर उस पर चिन्तन करते हैं, उनसे प्रेम करते हैं और उनके प्रसंगों पर ध्यान करते हैं, क्योंकि वे कभी असफल नहीं होतीं। ऐसा कहा जाता है कि रावण की मृत्यु के बाद जब हनुमानजी, सीताजी के पास गये और उन्होंने पूछा कि दस महिनों से जो राक्षसिनियाँ उन्हें कष्ट देती थीं, उन्हें कैसे दण्डित करें? तब माँ सीता ने सहजता से कहा –

पापानां वा शुभानां वा वधाहीनां प्लवनगमा।
कार्यं करुणामयेन न कश्चिन्नापराधयति।।

ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है, जिसने जीवन में भूल न की हो, इसलिए क्षमा करने में महानता है।

यही सीता हैं, जिन्हें हम पुन:-पुन: सुनते हैं। जब श्रीमाँ दीक्षा और सांत्वना हेतु आये, शिष्यों से कहती हैं – ''यहाँ आनेवालों में से कइयों ने बुरे कार्य किये हैं। उन्होंने ऐसे किसी पाप को नहीं छोड़ा, जो उन्होंने न किया हो, किन्तु जब वे आकर मुझे माँ कहकर पुकारते, तो मैं सब भूल जाती हूँ और उन्हें उनकी क्षमता से अधिक प्राप्त होता है।'' वह दिव्य करुणा है, ऐसी उदारता, चेतना का कोई मानसिक स्तर फलित नहीं कर सकता।

श्रीमाँ की कर्म के प्रति बिना शिकायत आचार नीति, दृढ़निष्ठा, भारतीय नारी समुदाय के लिए अपूर्व गौरव है। गृह-कर्म, कृषि-कार्य, गृह-निर्माण के क्षेत्र में किये गये कार्य को छोटा-बड़ा देखने की हमारी दृष्टि रहती है। किन्तु यह बहुत ही मूर्खता है, क्योंकि कार्य में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता है। न ही हमें गरीबी या मितव्ययी जीवन से लज्जित होना चाहिए। सारदा देवी ने कर्मों का कभी त्याग नहीं किया। वास्तव में उन्हें घर के साधारण ऐसे बहुत-से कार्य करने के कारण बहुत सहन करना पड़ा। किन्तु उन्होंने सभी कार्य श्रीरामकृष्ण देव के लिए हैं, इस बोध से किया। वे कार्य उनके लिए पवित्र उपासना हो गये और उनके कष्ट, इष्टदेवता की पूजा हो गयी।

श्रीमाँ सारदा के कष्ट सहन करने के सम्बन्ध में स्वामी निर्वेदानन्द लिखते हैं –

''इस युग में कामारपुकुर में सारदा देवी का जीवन, हमें सीता देवी के वनवास की कहानी को स्मरण कराता है। वन की कुटिया में निर्धनता में उन्हें अकेले रहना पड़ा। उन्हें धान कूटना और सब्जी उगाना पड़ा। भोजन हेतु इन चीजों को किसी तरह उबालना पड़ा। उन्हें नमक तक खरीदने के लिये कोई साधन नहीं था। किन्तु इस परिस्थिति को उन्होंने तपस्या अवधि के रूप में स्वीकार किया। लीला-संवरण के समय श्रीरामकृष्ण की बातों का वे स्मरण करती हैं – मेरे जाने के पश्चात् तुम कामारपुकुर जाना, जो भी मिले उसी से निर्वाह करना, चाहे उबला चावल और सब्जी क्यों न हो,

अपना समय भगवन्नाम में बिताना। ठाकुर की इस वाणी का श्रीमाँ ने अक्षरश: पालन किया। उन्होंने अपनी कठिनाई के सम्बन्ध में एक शब्द किसी से नहीं कहा, जयरामबाटी में रहनेवाली अपनी माँ तक को नहीं बताया और अपने दिन भगवान के चिन्तन में बिताये।''[२]

इस लोक-जीवन का यह दिव्य सुयोग है – स्वयं निरुद्देश्य स्वकेन्द्रित जीवन न जीना, बल्कि निर्धनता और शोक में वीरता से किसी नियम-आचारों का पालन करना और आशा-वाणी, प्रसन्नता तथा सद्भावना से दूसरों से मिलना। इनसे स्वर्ग का द्वार खुलता है। हम क्या वह प्रसंग कभी भूल सकते हैं, जिससे श्रीमाँ के जीवनीकारों ने हमें अवगत कराया है – जब एक कुलीन घर की भटकी भ्रष्ट हुई महिला दूर खड़ी रहती कि श्रीमाँ की पावनता प्रभावित न हो, तब श्रीमाँ सारदा स्वयं उठकर उसके पास गयीं और उसका आलिंगन कर बोलीं – आओ बेटी ! घर में अन्दर आओ! तुम अपने पापों के लिये पश्चात्ताप कर रही हो। आओ मैं तुम्हें दीक्षा दूँगी। अपने पूर्वकृत सभी पापों को ठाकुर के श्रीचरणों में अर्पण करो और सभी भयों से मुक्त हो जाओ।

यहाँ व्यक्ति श्रीकृष्ण की प्रिय वाणी, प्रियतम संदेश सुन सकता है – मा शुच: – शोक मत करो। जब श्रीमाँ हमारे साथ हों, तो हम क्यों डरें? वे हमारे साथ पूर्णत: अवश्य हैं। भले ही हम भीड़ में भटक गये हों या अपने को एकाकीपन में बन्द कर लिया हो, किन्तु श्रीमाँ हमेशा हमारे साथ हैं। हमें बस इतना करना है कि उनका मातृसुलभ मुख-मण्डल याद रखना है।

कलकत्ता में एक बंगाली महिला को श्रीमाँ सारदा ने दीक्षा दी, तब उस महिला ने पूछा ''मैं क्या परहेज रखूँ?''

श्रीमाँ ने पूछा – ''परहेज किसलिए रखना है?''

महिला ने कहा – ''रोग होने से औषध का प्रभाव शीघ्र होने के लिये परहेज का पालन करना होगा।

श्रीमाँ ने पूछा – 'तुम्हें नाम दिया है, इस का हेतु क्या है?'

महिला ने कहा – 'भवरोग का नाश करना।'

'इसके लिए परहेज क्या' ऐसा पूछने पर तब उस महिला ने कहा 'विकारों का संयम'। श्रीमाँ ने कहा ''तुम्हें यदि अनुभव करना हो, तो क्रोध का त्याग करना पड़ेगा।''

उस महिला ने श्रीसारदा माँ के हाथ पर पानी छोड़कर क्रोध-त्याग का संकल्प लिया। इस महिला का बेटा श्री बेलसरेजी के साथ था।

श्री बेलसरे जी ने पूछा, आप की माताजी कभी क्रोधित नहीं हुई क्या? तब उन्होंने (बेलसरेजी के मित्र ने) कहा – ''गत पचास सालों में वे किसी पर क्रोधित नहीं हुई। ऐसे प्रसंग आये, किन्तु वे शान्त रहती थीं, सदैव जप करती रहती थीं। उनका दामाद व्यसनी निकला, इसलिए विवाह-विच्छेद करना पड़ा। किन्तु वे शान्त थीं। उनसे पूछा गया, इस परिस्थिति में तुम शाान्त कैसे? तुम्हें दुख नहीं होता क्या? इस पर उन्होंने कहा – ''जगत में अपने गुरु द्वारा प्रदत्त भगवान का नाम न लेना ही दुखदायी है। नहीं तो क्यों दुख होवे?''

अन्त में आइये ! स्वामी अभेदानन्द जी द्वारा रचित श्रीमाँ के इस स्तोत्र का पाठ कर माँ की पवित्र आराधना करें –

पवित्रं चरितं यस्या: पवित्रं जीवनं तथा।
पवित्रतास्वरूपिण्यै तस्यै देव्यै नमो नम: ।।

– श्रीमाँ का चरित्र पवित्र है, उनका जीवन पवित्र है, उन पवित्रतास्वरूपिणी को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

○○○

सन्दर्भ सूत्र : **१.** सावित्री book VII, conto 4 **2.** Great women of India (1982), p.504

आत्मसंयम करो, प्राणायाम करो, नित्यानित्य में विवेक स्थिर करो। नित्य का ग्रहण और अनित्य का त्याग करो। ईश्वर के नाम का जप करो, जिससे चंचल मन स्थिर हो। इस शाश्वत नियम का यथाशक्ति आचरण करो।

कमल के पत्ते पर पड़ा हुए जलबिन्दु जिस प्रकार अस्थिर है, उसी प्रकार यह जीवन भी नितान्त अस्थिर है। सदैव स्मरण रहे कि सम्पूर्ण मानवजाति दुख, अहंकार आदि व्याधियों की शिकार है।

श्रीगुरु के चरण-कमलों में अनुराग करो और संसार के इस दासत्व से अपने को एकदम मुक्त कर लो। अपनी इन्द्रियों को संयत एवं मन को अन्तर्मुखी करो और अन्त:स्थ ईश्वर का दर्शन करो।

– श्रीशंकराचार्य

सारगाछी की स्मृतियाँ (१२५)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२१-२-१९६५

तारिणी महाराज – ॐ नमो नारायण ! शरीर कैसा है?

महाराज – मन अच्छा नहीं रहता।

तारिणी महाराज – आपका शरीर इतना अस्वस्थ है, इसीलिए मन में कष्ट है।

महाराज – हाँ, मन का कष्ट है, क्योंकि इन सबको कष्ट दे रहा हूँ।

तारिणी महाराज – नहीं, नहीं, ऐसा कुछ भी मत सोचिए। ठाकुर ने जैसे रखा है।

महाराज – क्या करूँ, दुख को रोक नहीं सकता हूँ।

२३-२-१९६५

कामारपुकुर के सम्बन्ध में बात उठी। वहाँ मणिक राजा के आम के बगीचे में कॉलेज और मन्दिर में मूर्ति इत्यादि स्थापित हुई है।

महाराज – मुझे ऐसा कामारपुकुर देखने का शौक नहीं है। इसके अलावा मैं कामारपुकुर में ही तो हूँ। कामारपुकुर आँखों के सामने जीवन्त दिख रहा है। वही घर, वही तालाब, सब दिखाई पड़ रहा है।

२५-२-१९६५

महाराज अपराह्न में वाराणसी सेवाश्रम के भीतर के मार्ग पर आपरेशन थिएटर के उत्तर दक्षिण की ओर टहल रहे हैं। सामने गेट के पास गाय दूही जा रही है। एक बछड़ा रँभाने लगा।

महाराज – बछड़े के रँभाने की आवाज सुनते ही श्रीमाँ का जीवन याद आ जाता है। माँ बछड़े की रस्सी खोल देती थीं।

अपराह्न में लगभग साढ़े पाँच बजे होंगे। अस्पताल में रोगी देखने का समय समाप्त हो गया है। महिलाएँ वापस घर जा रही हैं। कई महिलाओं की गोद में बच्चे हैं।

महाराज – प्राय: सभी बच्चे माँ की गोद में सिर रखे रहते हैं। सोते हैं न?

सेवक – नहीं, एक निश्चिन्तता का भाव रहता है।

महाराज – गोपाल की माँ का प्रसंग याद आता है। ठीक इसी तरह गोद में शिशु का सिर।

देखो, शिवरात्रि आ रही है। उस दिन कुछ बेल-पत्र इकट्ठा करके रखना। प्रथम प्रहर की पूजा हो जाने पर लवेश्वर शिव को अंजलि देकर कुछ भोजन ग्रहण कर लेना। यदि दिन के समय भी कुछ असुविधा लगे, तो कुछ खा लेना। दिनभर काम करना पड़ेगा।

सुनील आनन्द में है। शिवरात्रि आते ही उन्होंने शिव-विषयक भजन प्रारम्भ कर दिया है, इससे शिव का अच्छी तरह चिन्तन हो जाता है, बहुत अच्छा लक्षण है।

महाराज के बालसखा जयशंकर चौधुरी (जो उस समय साधु थे) ने पत्र भेजा है। थोड़े कट्टर स्वभाव के हैं।

महाराज – हमें अच्छा ही लगता है। काशी में एक वृद्ध रामानुजी साधु के पास गया था। उन्होंने कहा – मेरे लक्ष्मीनारायण के अतिरिक्त कोई दूसरा मुक्तिदाता नहीं है।

मैंने कहा – यह तो सच्ची बात है। हम लोग तो जानते हैं कि लक्ष्मीनारायण कहने का क्या अभिप्राय है।

२८-२-१९६५

सेवक जिस खाट पर सोते हैं, वह टूट गई है। इसलिए उसे ठीक करने हेतु महाराज चिन्तित हो उठे हैं। किस उपाय से उसे ठीक किया जाय, उसके लिए अनेक लोगों से परामर्श करके अन्तत: सुनील महाराज से कहकर उन्होंने ठीक करा लिया। उसको कमरे में ले जाते समय महाराज बोले, ''जय रामकृष्ण कहकर उस (खाट) को घर में ले जाना।''

सेवक – ऋषिकेश में आप रात में कब भोजन करते थे?

महाराज – रात आठ बजे दाल और रोटी खाता था।

जिस दिन भिक्षाटन करता, उस दिन सायंकाल ही गंगा तट पर बैठकर खा लेता। भिक्षाटन नहीं करने के दिनों में रात में लालटेन के ऊपर रखकर उसे गरम कर लेता था। व्यवस्था रहने पर और शरीर स्वस्थ रहने पर सन्ध्या के पहले ही खा लेना अच्छा है।

महाराज के शरीर में खुजली हुई है। यह एक विशेष प्रकार का खुजली-रोग है। महाराज के शरीर और पीठ का चमड़ा पतले रेशम की तरह कोमल है, फिर भी इतनी खुजली होती है कि धारदार सीप या कटोरी आदि के द्वारा रगड़ने पर थोड़ा भी शरीर का चमड़ा जस का तस ही रहता है। खूब रगड़ने पर थोड़ा आराम मिलता है। प्रारम्भ में होम्योपैथिक उपचार से कोई लाभ नहीं हुआ। फिर केलामिन एविल दवा चली। इससे दो चार दिन थोड़ा आराम मिला, फिर अत्यधिक कष्ट होने लगा। फिर एक आयुर्वेद चिकित्सक आए। उनकी दवा प्रारम्भ हुई। नीम की पत्ती और हल्दी कूटकर उसे महाराज के सारे शरीर पर लेप करके धूप में रहना होता था, तदुपरान्त स्नान करना था।

इस लेप-मालिश के समय महाराज पातंजल योगसूत्र को लेकर चिन्तन-मनन कर रहे थे। हरिहर आरण्य के वार्तिक, टीका, सोपान, व्यासभाष्य तथा अन्य कई पुस्तकों को एकत्र करके रखे हैं। जो भी आता, उसे ही आग्रहपूर्वक उन पुस्तकों से कुछ अंश पढ़कर सुनाने को कहते। वे सुनते, उस पर चर्चा, प्रश्नोत्तर करते और अन्ततः सेवक से एक अपनी व्याख्या मुख से बोलते जाते। जैसे नीम और हल्दी के टुकड़ों ने उत्सव का रूप ले लिया था, वैसे ही पातंजल योगसूत्र के विवेचन और व्याख्या का भी एक भावमय परिवेश निर्मित हो गया था। पाठकों को जिज्ञासा होगी कि नीम के पत्तों और हल्दी का क्या लाभ मिला? कुछ भी लाभ नहीं हुआ, केवल परिश्रम ही हाथ लगा।

एक दूसरे प्रसंग पर आते हैं। आशा है, पाठकों को अच्छा लगेगा। सेवाश्रम में मोटे और नाटे कद के, हमेशा स्फूर्तिमान रहनेवाले, आकर्षक और मजेदार व्यक्तित्व के एक संन्यासी थे। सभी लोग उनको लेकर आनन्द-विनोद करते और वे भी उसमें योगदान करके आनन्दित होते। काशी में गर्मी के मौसम में साधु लोग सामने के मैदान में रात में सोया करते थे। प्रत्येक साधु की अपनी चारपाई थी। संध्या के बाद सभी लोग अपनी-अपनी चारपाई रखकर चार डंडों की सहायता से मच्छरदानी टांगकर भीतर जप ध्यान करते थे और रात में पाठ के बाद बिस्तर पर सोने चले जाते थे। एक दिन वे संन्यासी बिस्तर पर शान्तिपूर्वक सो रहे थे, तभी उन्होंने अचानक देखा कि उनकी मच्छरदानी आकर पेट के ऊपर पड़ी है और मच्छरदानी के साथ ही एक बड़ी चीज उनके पेट से स्पर्श कर रही है। हुआ यह कि किसी रसिक साधु ने उनकी मच्छरदानी की रस्सियों को ढीला करके उस पर एक बेल रख दिया था। बेल के भार से धीरे-धीरे वह मच्छरदानी बेल सहित, उन महाराज (साधु) के पेट को स्पर्श कर रही थी। नींद टूटते ही सब कुछ समझकर आस-पास के साधुओं ने उनकी मच्छरदानी की रस्सी खोल दी।

काशी में सभी साधु इन महाराज को लेकर इसी तरह हास-विनोद करते थे। एक दिन इन सबसे ऊबकर उन्होंने अध्यक्ष (महन्त) बुद्ध महाराज से शिकायत कर दी। बुद्ध महाराज ने कुछ नहीं कहा। उसी दिन दोपहर के प्रसाद ग्रहण के समय महन्त महाराज ने खड़े होकर कहा, ''मेरा एक निवेदन है। आप सबके व्यवहार से क्षुब्ध होकर इन महाराज ने मुझसे शिकायत की है। इसलिए आप लोग समुचित व्यवहार कीजिए।'' पंगत के सभी लोग शान्त, स्तब्ध थे। सभी लोग खाकर, हाथ-मुँह धोकर चले गए, किसी ने कुछ नहीं कहा। वे महाराज भी कुछ नहीं बोले। अगला दिन भी बीत गया। किसी ने उनसे कोई बात नहीं की। तीसरे दिन भोजन के समय वे महाराज चुप नहीं रह सके। उन्होंने पास के महाराज को हल्का धक्का मारा। तभी उन साधु ने महन्त का ध्यानाकर्षण करते हुए कहा कि देखिए ये क्या कर रहे हैं। महन्त महाराज ने गंभीर होकर पंगत में खड़े होकर कहा, ''मेरा एक निवेदन है। आज से आपलोग महाराज के साथ पहले जैसा व्यवहार कीजिये। साथ-साथ सभी लोग समवेत स्वर में बोल उठे – ॐ नमो पार्वतीपतये हर-हर।''

(क्रमशः)

शरीररूप इस पत्ते को पीला पड़ने और भूमि पर टूटकर गिरने में कोई समय नहीं लगता। यह शरीर मिथ्या ज्ञान से उद्भूत हुआ है। अतः यह स्वप्नवत् भ्रमों से परिपूर्ण है। इस शरीर की क्षणभंगुरता प्रत्यक्षसिद्ध है।

– श्रीरामचन्द्र

क्रोध से अपना ही नाश

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

आज हम ऐसे विषय पर बात करेंगे, जिससे बच्चे और बड़े सभी लोग प्रभावित हैं। बच्चो ! हम बात कर रहे हैं हिंसा और क्रोध की। आज के समय में यह समस्या हर एक घरों में प्रवेश कर चुकी है। बच्चे बड़ों से सम्मानजनक बात नहीं करते। शान्ति का भाव नहीं दिखता तथा हमेशा अस्थिरता का भाव बना रहता है और यही विकृतियाँ घरों से बाहर निकलकर समाज तथा देश को भी प्रभावित कर रही हैं। जब हम अपने आपको दूसरों से छोटा समझते हैं, तब हमारी मानसिक स्थिति नीचे चली जाती है और तब हिंसा और क्रोध उत्पन्न होता है तथा जब हम अपने आपको दूसरों से बड़ा समझने लगते हैं, तो हमारे अन्दर अहंकार का भाव उत्पन्न हो जाता है। एक और कारण, जो उसमें प्रमुख भूमिका निभाता है वह है व्यर्थ की इच्छाएँ। हम देखते हैं, जब भी हम अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने में असमर्थ होते है तब हमारा मन अशान्त होने लगता है, हिंसा या क्रोध का रूप ले लेता है, इसका बुरा प्रभाव हमारे मस्तिष्क और शरीर पर पड़ता है।

जब भी हम दूसरों की क्षति पहुँचाते हैं, चाहे वह मन, कर्म और वचन किसी भी तरह से क्यों न हो, वह हिंसा कहलाता है। इसीलिए कहा जाता है कि किसी के लिए बुरा न सोचे, न बोलें और न ही ऐसा कोई कर्म करें, जिससे दूसरों को दुख की अनुभूति हो। पर बच्चों, कोई आप को नुकसान पहुँचा रहा है और आप उससे बचने के लिए उपाय करते हैं, जैसे कोई आपको बिना कारण मार रहा हो, तो उसे रोकने और मारने हेतु विवश होने पर वह हिंसा नहीं कहलाती है। हमें इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हम जानबूझकर गलत व्यवहार न करें, केवल ऐसा कार्य करें कि दूसरों की आत्मा पर विजय प्राप्त कर सकें। ऐसा करना थोड़ा कठिन अवश्य है, किन्तु असम्भव नहीं। धीरे-धीरे अभ्यास से ऐसा सम्भव है।

आओ बच्चो ! उदाहरण के लिए हम सम्राट अशोक के बारे में जानते हैं। अशोक अपने क्रोध के लिए बदनाम था। वह अपनी बात न मानने पर लोगों को कड़ी-से-कड़ी सजा दिया था तथा विश्व की सबसे बड़ा युद्ध (कलिंग-युद्ध) लड़ा, जिसमें दोनों ओर से एक-एक लाख सैनिक मारे गए थे तथा डेढ़ लाख लोग बेघर हो गए। इतना रक्तपात हुआ कि वहाँ से बहने वाली दया नाम की नदी में पानी के स्थान पर खून बहने लगा। इस लड़ाई से बहुतों का सब कुछ नष्ट हो गया। यह देख सम्राट अशोक को बहुत दुख हुआ और वह रोने लगा। अपनी गलती का बोध होते ही उसने अपने आप को बदल कर शान्तिपूर्ण ढंग से राज्य करने का निर्णय लिया और प्रसन्नता से जीवन जीने लगा।

सम्राट अशोक

क्रोध से कोई भी बात सुलझ नहीं सकती, क्रोध से कोई भी कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। क्रोध से कैसे हम अपनी हानि कर लेते हैं, उससे सम्बन्धित एक शिक्षाप्रद कहानी है।

एक रविवार के दिन एक बढ़ई की दुकान के अन्दर एक साँप आ गया। वह भूखा था। भूख के कारण वह इधर से उधर घूमने लगा। भोजन की खोज में घूमते-घूमते उसका

शेष भाग पृष्ठ २४१ पर

श्रीरामकृष्ण का आकर्षण

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

अनुवाद – अवधेश प्रधान, वाराणसी

सुरेशचन्द्र दत्त

कलकत्ता में हाट खोला मुहल्ले का दत्त परिवार प्रसिद्ध है। सुरेशचन्द्र इसी परिवार की सन्तान थे। ब्राह्म समाज में आते-जाते थे। निराकार में उनका विश्वास था। लेकिन साकार के विषय में मन में सन्देह था। श्रीरामकृष्ण के भक्त नाग महाशय के साथ परिचय हुआ। साकार में विश्वास रखनेवाले नाग महाशय के साथ बहुत तर्क-वितर्क होता था, किन्तु दोनों के बीच सौहार्द भी था।

१८८२-८३ ई.। एक दिन नाग महाशय के साथ सुरेशचन्द्र दत्त श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने आए। निराकार भाव बना रहा। लेकिन जाने किस आकर्षण में इसके बाद वे कई बार दक्षिणेश्वर गए। कभी अकेले, कभी नाग महाशय के साथ। नाग महाशय ने उनसे दीक्षा ग्रहण करने को कहा, लेकिन उन्होंने उनकी बात पर कान नहीं दिया। एक दिन सुरेशचन्द्र दीक्षा की आवश्यकता के बारे में श्रीरामकृष्ण देव का अभिमत जानने के लिए उनके पास पहुँचे। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें विस्तारपूर्वक दीक्षा की आवश्यकता के बारे में समझाया, फिर भी सुरेशचन्द्र ने कहा – ''मेरा मन्त्र या ईश्वरीय रूप पर कोई विश्वास नहीं है।'' श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें स्वाधीनता देते हुए कहा, ''अभी तुम्हें दीक्षा की आवश्यकता नहीं है। बाद में तुम इसकी आवश्यकता समझोगे, समय आने पर तुम्हारी दीक्षा होगी।[६६]

स्वाधीनता देने के बावजूद रामकृष्ण ने रस्सी अपने हाथ में रखी। वह रस्सी खींची गई १८८५ ई.में जब सुरेशचन्द्र कोएटा में सैनिक विभाग में नौकरी करते थे। उस समय सरकार की उदार नीति के कारण नौकरी के क्षेत्र में अनैतिकता की वृद्धि हो रही थी। सत्यवादी और स्वाधीनचेता सुरेशचन्द्र के लिए ऐसी परिस्थिति में नौकरी छोड़ने के अलावा और कोई उपाय न था। अन्त में बहुत प्रयास के बाद सुरेशचन्द्र एक दिन नौकरी से मुक्ति पाकर कलकत्ता के लिए रवाना हुए। मार्ग-व्यय हेतु केवल बीस रुपये थे। काशी पहुँचने पर सारा धन समाप्त हो गया। अतएव पैदल ही कलकत्ता प्रस्थान किये। जो कुछ खाने को मिलता, उसी से पेट भर लेते और जहाँ पड़ाव डालते वहाँ गीता का अध्ययन करते। इस प्रकार भागलपुर पहुँचकर किसी सज्जन की सहायता से ट्रेन का टिकट मिला और कलकत्ता वापस आ गए।

ऐसी अवस्था में सुरेशचन्द्र के मन में दीक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा प्रबल हुई। लेकिन तब तक श्रीरामकृष्ण अपनी स्थूल लीला का संवरण कर चुके थे। फिर भी उनकी रस्सी के खिंचाव ने सुरेशचन्द्र को अशान्त कर दिया। वे नित्य व्याकुल होकर प्रार्थना करते, रोते। श्रीरामकृष्ण ने कहा था, ''व्याकुलता होने से ही हुआ।'' इसीलिए ''इस प्रकार अशान्त मन से शयन कर रहे थे कि एक दिन रात के अन्तिम प्रहर में उन्होंने स्वप्न देखा, परमहंस देव गंगा के भीतर से ऊपर आए और उनके सम्मुख खड़े हो गए। क्या हुआ, यह समझने के पहले ही विस्मित सुरेशचन्द्र को और अधिक विस्मित करते हुए ठाकुर ने मन्त्र का उच्चारण करते हुए दीक्षा प्रदान की। श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदय से सुरेशबाबू मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम करके उनका चरण स्पर्श करने को उद्यत हुए, लेकिन वे फिर ठाकुर को देख नहीं पाए।''[६७]

तब से सुरेशचन्द्र का एक नया जीवन आरम्भ हुआ। निराकार से साकार की उपासना में, विशेषत: श्रीरामकृष्ण में अपने प्राण निवेदन करके सुरेशचन्द्र गम्भीर साधना में मग्न हो गए। वे चुम्बक के आकर्षण से आकृष्ट मात्र नहीं हुए, बल्कि पारसमणि के स्पर्श से सोना हो गए।

शिष्य शरच्चन्द्र चक्रवर्ती ने स्वामीजी से दीक्षा प्राप्त करने के बाद एक दिन आलाम बाजार मठ में ठाकुर को भोग देने इच्छा व्यक्त की। लेकिन कलकत्ता से सबेरे सबेरे बाजार करके मठ में सामान पहुँचाना सम्भव होगा कि नहीं, शरच्चन्द्र को इसी प्रकार की चिन्ता हुई। लेकिन उनकी चिन्ता दूर करते हुए सुरेशचन्द्र ने स्वयं ही सब व्यवस्था करके उनके द्वारा आलम बाजार मठ में पहुँचवा दिया। शरच्चन्द्र ने एक ही गाड़ी में चले चलने का उनसे अनुरोध किया,

तो वे बोले, ''अरे नहीं, मैं दही हाथ में लेकर पैदल चलते हुए आऊँगा, नहीं तो गाड़ी के हिलने पर दही छलकेगी। ठाकुर के भोग में देना है न !''[६८] अन्त में शरच्चन्द्र सब सामान लिये हुए यथासमय मठ में पहुँच गए, तो स्वामीजी ने सब कुछ देखकर आश्चर्यपूर्वक पूछा, ''निश्चय ही यह तुम्हारा काम नहीं है। किसने बाजार किया है, बताओ तो !'' शरच्चन्द्र ने सुरेश बाबू का नाम लिया, तो स्वामीजी ने आवेगपूर्वक कहा, ''देखा, ठाकुर ने जिनको छू दिया है, वे सोना हो गए हैं।''[६९]

'सोना' सुरेशचन्द्र ''श्रीश्रीरामकृष्ण देव के उपदेश'' शीर्षक ठाकुर की संक्षिप्त जीवनी के साथ ९५० उपदेशों का एक प्रामाणिक संकलन प्रकाशित करके श्रीगुरु के चरणों में भक्तिमय अर्घ्य प्रदान कर गए हैं।

गिरीशचन्द्र घोष

मदमत्त पद टले निमे दत्त रंगस्थले।
प्रथम देखिल बंग नव नट गुरु तार।[७०]

१८६९ ई.का अक्टूबर का महीना। प्राणकृष्ण हालदार के मकान पर शारदीया पूजा के उपलक्ष्य में दीनबन्धु मित्र का 'सुहागिन की एकादशी' का नाटक हो रहा था। निमे दत्त की भूमिका में थे २५ वर्षीय प्रौढ़ युवक गिरीशचन्द्र। उसी नाटक का स्मरण करके अमृतलाल बसु ने उपर्युक्त पंक्तियों में गिरीशचन्द्र को बंगाल का 'नव नटगुरु' कहकर नमस्कार निवेदित किया है।

गिरीशचन्द्र घोष

अभिनेता और नाटककार, 'बंगाल के गैरिक' गिरीशचन्द्र एक महान प्रतिभा हैं। उनका नाटककार का जीवन हमारा आलोच्य विषय नहीं है। हमारा आलोच्य विषय है गिरीशचन्द्र के जीवन का उत्तरण या ऊर्ध्वगमन। इस उत्तरण के रंगमंच पर निर्देशक थे श्रीरामकृष्ण और अभिनेता थे गिरीशचन्द्र। मद्यप, नास्तिक, ऊपर से देखने पर एक कठिन-कठोर चरित्र का 'भक्त भैरव गिरीश' में रूपान्तर आध्यात्मिक जगत के इतिहास की एक आश्चर्यजनक घटना है। फिर भी यह बात ध्यान में रखनी होगी कि मद्यप, नास्तिक गिरीश के अवचेतन में भैरव भाव विद्यमान था। श्रीरामकृष्ण पूँथी के रचयिता अक्षयकुमार सेन ने गिरीशचन्द्र के बारे में श्रीरामकृष्ण के दिव्य दर्शन का चित्र इस प्रकार अंकित किया है –

काली मंदिरे आमि आपनार मने
उपविष्ट हेनकाल देखि निरखिया।
आइल मूरति एक नाचिया नाचिया।।
बगले बोतल दुटि चूले बाँधा झूँटि।
पुरुषेर चिह्न जेनो खेजूरेर आँटि।।
केवा से जखन आमि जिज्ञासुनि ताँय।
कहिल भैरव मुइ आइनु हेथाय।।
किवा प्रयोजन तारे पुछिले आबार।
उत्तर करिल कार्य करिब तोमार।।
गिरिश आमार काछे आसिबार पर।
देखिनु भैरव सेइ ताहार भितर।।[७१]

विवेकानन्द पर अनुसन्धानकर्ता विद्वान् शंकरीप्रसाद बसु ने लिखा है, ''रामकृष्ण ने किसी तुच्छ सत्ताहीन मनुष्य का उत्तोलन नहीं किया था। उन्होंने कीर्तिनाशा को पुण्यस्रोता सागर-वाहिनी बना दिया। यही उनकी शक्ति की महिमा है।[७२]

बागबाजार के बोसपाड़ा में दीनानाथ बसु का मकान था। श्रीरामकृष्ण परमहंस वहाँ आए थे। गिरीशचन्द्र को कौतूहल हुआ, परमहंस कैसा होता है? दीनानाथ बसु के मकान पर चल पड़े। लेकिन ''वहाँ जाकर मैं श्रद्धा के विपरीत उनके प्रति अश्रद्धा लिये हुए लौटा। दीनानाथ बाबू के मकान पर जब मैं पहुँचा, उस समय परमहंस कुछ उपदेश दे रहे थे और केशव बाबू आदि उसे आनन्द से सुन रहे थे। संध्या हो गई थी, एक आदमी ने मोमबत्ती जलाकर परमहंस देव के सामने लाकर रख दी। तब परमहंस बार-बार पूछने लगे, ''शाम हो गई है?'' मैंने यह देख-सुनकर सोचा, ढोंग देखो! शाम हो गई है, सामने मोमबत्ती जल रही है, फिर भी ये समझ नहीं पा रहे हैं कि संध्या हो गई है कि नहीं? और क्या देखता, चला आया।''[७३]

मुँह से 'ढोंग' कहने पर भी मन में एक खटका लगा हुआ था। उस दिन वापस आने पर भी गिरीशचन्द्र का मन श्रीरामकृष्ण रूपी चुम्बक के साथ ही लगा रहा, इसका अनुमान हम द्वितीय दर्शन की घटना से लगा सकते हैं।

रमाकान्त बसु स्ट्रीट। बलराम बसु का मकान। श्रीरामकृष्ण आए हैं। निमंत्रित व्यक्तियों में गिरीशचन्द्र भी थे। गिरीशचन्द्र

के शब्दों में, ''देखा कि परमहंस देव आए हैं, बिधु कीर्तनिया उनको भजन सुनाने के लिए निकट ही बैठा है। बलराम बाबू के बैठकखाने में अनेक लोगों का समागम हुआ है। परमहंस देव के आचरण से मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। मैं जानता था, जो परमहंस और योगी कहकर अपना परिचय देते हैं, वे किसी के साथ बात नहीं करते, किसी को नमस्कार नहीं करते; कोई यदि अत्यन्त कठोर साधना करता है, तो उसे चरण-सेवा करने देते हैं। इन परमहंस देव का व्यवहार बिलकुल उलटा था, अत्यन्त दीनभाव से बार-बार मस्तक से भूमि स्पर्श करते हुए नमस्कार करते थे। एक व्यक्ति मेरे भूतपूर्व मित्र थे, उन्होंने परमहंस देव को लक्ष्य करके व्यंग्यपूर्वक कहा, ''बिधु की उनसे पहले से ही बातचीत है, उसके साथ मस्ती होती है।' यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी। उसी समय अमृत बाजार पत्रिका के सुविख्यात संपादक शिशिर कुमार घोष उपस्थित हुए। परमहंस देव के प्रति उनको विशेष श्रद्धा का बोध नहीं हुआ। उन्होंने कहा, ''चलो, और क्या देखोगे?'' मेरी इच्छा थी और कुछ देखूँ। लेकिन वे हठ करके मुझे साथ लेते आए।''[७४]

जिन्होंने एक दिन 'ढोंग' कहा था, आज उन्हीं गिरीशचन्द्र ने कहा, ''यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी। प्रथम दर्शन में जिन्होंने कहा था, ''और क्या देखता, चला आया।'' आज उन्होंने दूसरे व्यक्ति के द्वारा चले आने की जिद करने पर प्रतिक्रिया की,'' मेरी इच्छा थी, कुछ और देखूँ।'' चुम्बकीय आकर्षण उपेक्षणीय न रहा।

स्टार थिएटर ६८ नं.बिउन स्ट्रीट। 'चैतन्य लीला' नाटक चल रहा था। श्रीरामकृष्ण वहाँ उपस्थित थे। गिरीशचन्द्र के खबर देने पर उन्होंने कहा, ''उनका टिकट नहीं लगेगा, लेकिन दूसरों का लगेगा।'' इतना ही नहीं, उनकी अभ्यर्थना के लिए स्वयं अग्रसर हुए। श्रीरामकृष्ण ने प्रथम नमस्कार किया, तो गिरीशचन्द्र ने प्रतिनमस्कार किया। उन्होंने पुन: नमस्कार किया, गिरीशचन्द्र ने भी वैसा ही किया। लेकिन श्रीरामकृष्ण ने फिर नमस्कार किया, तो गिरीशचन्द्र ने घटना को यहीं विराम देने के लिए मन ही मन नमस्कार किया और उनको ले जाकर एक बॉक्स में बिठाया, एक पंखेवाले को नियुक्त कर दिया। इसके बाद अस्वस्थता के कारण गिरीशचन्द्र घर चले गए, लेकिन चुम्बक का आकर्षण क्रमश: बढ़ता ही गया।

गिरीशचन्द्र के मन में संशय था – क्या ईश्वर है? उन्हें प्राप्त करने का क्या उपाय है? लोग कहते हैं, गुरु करना आवश्यक है। लेकिन अपने ही जैसे एक आदमी को गुरु के रूप में स्वीकार करना उनके लिए असंभव है। यदि ईश्वर हैं, तो वे ही उनके गुरु होंगे। इसी प्रकार की डाँवाडोल की स्थिति में एक दिन एक वैष्णव भक्त ने उनको बताया, वे नित्य भगवान को भोग देते हैं और कभी-कभी निवेदित रोटी पर दाँत के निशान रहते हैं। ''लेकिन यह सौभाग्य गुरु द्वारा उपदिष्ट न होने पर नहीं होता।'' गिरीशचन्द्र अपने कमरे का दरवाजा बंद करके गुरु के लिए रोए। इसके तीन दिन बाद गिरीश की श्रीरामकृष्ण के साथ चौथी भेंट उन्हीं के शब्दों में, ''इस घटना के तीन दिन बाद मैं किसी कारण से अपने मुहल्ले के चौराहे के एक पत्थर पर बैठा था, देखा कि चौराहे के पूरब की ओर से नारायण और एक-दो भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण देव धीरे-धीरे आ रहे हैं। मैंने उनकी ओर दृष्टि फिराई ही थी कि उन्होंने नमस्कार किया। उस दिन मैंने नमस्कार किया, तो उन्होंने पुन: नमस्कार नहीं किया। मेरे सामने से होकर धीरे-धीरे चौराहे के दक्षिण ओर के रास्ते पर चले। जब वे जा रहे थे, तो मुझे ऐसा लगने लगा, जैसे किसी अनजाने सूत्र के द्वारा मेरे वक्षस्थल को अपनी ओर खींच रहे हैं। वे कुछ दूर चले गए थे, मेरी इच्छा हुई, मैं उनके साथ जाऊँ। इसी समय उनके पास से कोई एक आदमी मुझे बुलाने आया, कौन था, यह मुझे याद नहीं आ रहा है। उसने कहा – परमहंस देव बुला रहे हैं। मैं चल पड़ा।''[७५]

गिरीशचन्द्र के बलराम बाबू के मकान पर पहुँचने के बाद श्रीरामकृष्ण ने भावावस्था में कहा, ''नहीं, नहीं, ढोंग नही, ढोंग नहीं, ढोंग नहीं।''[७६] गिरीशचन्द्र के जीवन में एक नए अध्याय का आरम्भ हुआ। श्रीरामकृष्ण के दैवी आकर्षण की, 'अज्ञात सूत्र' के आकर्षण की वे उपेक्षा नहीं कर सके। उपर्युक्त घटना के कुछ दिन बाद श्रीरामकृष्ण थिएटर में आए। गिरीशचन्द्र को सूचना दी गई, तो उन्होंने बॉक्स में ले जाकर बैठाने को कहा। देवेन्द्र बाबू ने उनसे कहा, ''आप उनकी अगवानी करके नहीं ले आएँगे?'' गिरीशचन्द्र ने नाराजगी व्यक्त की, ''मेरे बिना गए वे गाड़ी से उतर नहीं पाएँगे।'' संस्कारवश दम्भ के सिर पर सवार होने के बावजूद गिरीशचन्द्र दैवी आकर्षण की उपेक्षा नहीं कर सके। इसीलिए कहते हैं, ''लेकिन गया। मैं पहुँचा ही था, तभी वे गाड़ी से उतर रहे थे। उनका मुख-कमल

देखकर मेरा पाषाण हृदय भी पिघल गया। मैंने अपने को धिक्कारा, वह धिक्कार भावना अब भी मेरे मन में बनी हुई है। सोचा, इस परम शान्त व्यक्ति की मैं अगवानी नहीं करना चाहता? उनको ऊपर ले गया। वहीं उनके श्रीचरण स्पर्श करके प्रणाम किया।''[७७]

कुछ दिन बीत गए। एक दिन लगभग तीन बजे गिरीशचन्द्र थिएटर में बैठे हुए थे। एक पर्ची मिली – मधुराय की गली में रामचन्द्र दत्त के मकान पर श्रीरामकृष्ण का आगमन होने वाला है। इसके बाद की प्रतिक्रिया और घटना के बारे में गिरीशचन्द्र ने लिखा है, ''वह पर्ची पढ़ते ही अपने मुहल्ले के चौराहे पर बैठे हुए मेरे हृदय में जिस प्रकार का आकर्षण हुआ था, उसी प्रकार का आकर्षण हुआ। मैं जाने को तत्पर हुआ, लेकिन फिर सोचने लगा कि एक अनजाने घर में बिना निमंत्रण के क्यों जाऊँ? इस अज्ञात सूत्र के आकर्षण से वह बाधा नहीं रही। चल पड़ा, लेकिन अनाथबाबू के बाजार के समीप जाकर सोचा, नहीं जाऊँगा। सोचने से क्या होता है; मुझे तो वही सूत्र आकृष्ट कर रहा था। कभी आगे बढ़ता, कभी रुक जाता। रामबाबू की गली के मोड़ पर जाकर भी रुक गया। बाद में रामबाबू के मकान पर पहुँच गया। दरवाजे पर रामबाबू बैठे हुए थे। भक्त चूड़ामणि सुरेन्द्रनाथ मित्र भी थे। सुरेन्द्र बाबू ने मुझसे साफ-साफ पूछा, मैं यहाँ, क्यों आया? मैंने कहा, ''परमहंस का दर्शन करने।'' रामबाबू के मकान के ही निकट सुरेन्द्र बाबू का मकान था। वे मुझे वहीं ले गए और मुझे बताने लगे कि उन्होंने किस प्रकार परमहंस देव की कृपा प्राप्त की है। मुझे वे सब बातें अच्छी नहीं लगीं। मैं उन्हीं के साथ रामबाबू के मकान पर लौट आया। उस समय सन्ध्या हो गई थी, अपने आँगन में रामबाबू खोल बजा रहे थे, परमहंस देव नृत्य कर रहे थे, भक्त भी उनको घेर कर नृत्य कर रहे थे। गीत गाया जा रहा था – ''नदे टलमल टलमल करे- गौर प्रेमेर हिल्लोले'' (गौर के प्रेम की हिल्लोल से नदिया कम्पित हो रहा है)। मुझे अनुभव होने लगा, मानो सचमुच रामबाबू का आँगन टलमल कर रहा है। मेरे मन में दुख होने लगा, यह आनन्द मेरे भाग्य में नहीं है। आँखों में आँसू आ गए। नृत्य करते-करते परमहंस देव समाधिस्थ हो गए, भक्त पदधूलि लेने लगे, मेरी इच्छा हुई, मैं भी पदधूलि लूँ, लेकिन लज्जा के कारण नहीं ले सका। सोचा, उनके निकट जाकर पदधूलि लेने पर, पता नहीं, कौन क्या सोचे। मेरे मन में जिस क्षण इस प्रकार के भाव का उदय हुआ, उसी क्षण परमहंस देव की समाधि भंग हुई और वे नृत्य करते-करते ठीक मेरे सम्मुख आकर समाधिस्थ हो गए। अब चरणस्पर्श के लिए मेरे आगे कोई बाधा नहीं रह गई। मैंने पदधूलि ग्रहण की। संकीर्तन के बाद परमहंस देव रामबाबू के बैठकखाने में आकर बैठे। मैं भी उपस्थित हुआ। परमहंसदेव मुझ से बात करने लगे। मैंने पूछा, 'मेरे मन की वक्रता दूर हो जाएगी न? उन्होंने कहा, दूर हो जाएगी।' मैंने फिर यह बात कही। उन्होंने वही उत्तर दिया। मैंने फिर एक बार पूछा, परमहंस देव ने भी वही उत्तर दिया। लेकिन मनोमोहन मित्र नाम के एक परमहंस देव के परम भक्त ने कुछ रूखे स्वरों में कहा, ''हो गया, उन्होंने उत्तर दे दिया, अब उनको तंग क्यों करते हो?' इससे पहले इस प्रकार की बात का उत्तर दिये बिना मैं कभी नहीं रहा। मनोमोहन बाबू की ओर मुड़कर देखा, लेकिन सोचा, ये सत्य ही कह रहे हैं; जिनकी एक बात पर विश्वास नहीं, वे सौ बार भी बोलें, तो उनकी बात विश्वास के योग्य नहीं होगी। मैं परमहंस देव को प्रणाम करके थिएटर वापस आ गया। देवेन्द्र बाबू कुछ दूर तक मेरे साथ आए और अन्त में उन्होंने अनेक बातें समझाकर मुझे दक्षिणेश्वर जाने का परामर्श दिया।''[७८]

इस बार दक्षिणेश्वर। श्रीरामकृष्ण खींचते-खींचते गिरीशचन्द्र को अपने किले में ले आए। यहीं उनका आत्मसमर्पण हुआ। उस दिन लज्जा, संकोच कुछ न रहा। गिरीशचन्द्र ने लिखा है, ''मैंने जाकर परमहंसदेव के पादपद्मों में प्रणाम किया। मन ही मन 'गुरुब्रह्मा...' इत्यादि स्तव की आवृत्ति की। उन्होंने मुझे बैठने का आदेश दिया और कहा – ''मैं तुम्हारी ही बातें कर रहा था, सौगन्ध खाता हूँ, इससे पूछ लो।'' बाद में किसी उपदेश की बात कहने लगे। मैंने उन्हें बीच में रोकते हुए कहा, ''मैं उपदेश नहीं सुनूँगा, मैंने बहुत उपदेश लिखे हैं, उससे कुछ नहीं होता। आप यदि मेरा कुछ (कल्याण) कर सकते हैं, तो करिए।'' इस बात से वे सन्तुष्ट हुए। रामलाल दादा उपस्थित थे, उनसे कहा, ''क्यों रे? वह कौन-सा श्लोक है, बोलो तो?'' रामलाल दादा ने श्लोक की आवृत्ति कर दी। श्लोक का भाव है – पर्वत गह्वर में, निर्जन में बैठने से भी कुछ नहीं होता, विश्वास ही पदार्थ है। उस समय मेरे मन में हुआ – 'मैं निर्मल हूँ।' मैंने व्याकुल होकर पूछा, ''आप कौन हैं?'' मेरी जिज्ञासा का

शेष भाग पृष्ठ २३७ पर

गीतातत्त्व-चिन्तन (१३)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

अर्जुन द्वारा क्षमा प्रार्थना

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।।४१।।
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहार-शय्यासन-भोजनेषु
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।।४२।।

तव इदं महिमानम् (आपकी इस महिमा को) अजानता सखा इति मत्वा (न जानते हुए आप सखा हैं, ऐसा मानकर) प्रणयेन वा प्रमादात् अपि (प्रेम से अथवा प्रमाद से भी) मया हे कृष्ण हे यादव हे सखे इति (मैंने हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखा ! इस प्रकार) यत् प्रसभम् उक्तम् (जो हठात् कहा है) च अच्युत यत् अवहासार्थम् (और हे अच्युत ! जो विनोद के लिए) विहार शय्यासन भोजनेषु (विहार, शय्या, आसन और भोजन आदि में) एक: अथवा तत्समक्षम् अपि (अकेले अथवा सखाओं के साथ भी) असत्कृत: असि तत् अप्रमेयम् त्वाम् (आपका अपमान हुआ है, उसके लिए आप अप्रमेय से) अहम् क्षामये (मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ)।

''आपकी इस महिमा को न जानते हुए आप सखा हैं, ऐसा मानकर प्रेम से अथवा प्रमाद से भी मैंने हे कृष्ण ! हे यादव! हे सखा ! इस प्रकार जो हठात् कहा है और हे अच्युत ! जो विनोद के लिए विहार, शय्या, आसन और भोजन आदि में अकेले अथवा सखाओं के साथ भी आपका अपमान हुआ है, उसके लिए आप अप्रमेय से मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।''

प्रभो ! मैं आपके इस दिव्य रूप को नहीं जानता था। आपकी महिमा से मैं अपरिचित था। आपको सखा समझकर जो कुछ कठोर वचन मैंने आपको कहा है, इसलिए मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ। युद्ध से पहले भगवान से अर्जुन ने कहा था कि कौरव यदि युद्ध करना चाहते हैं, तो वे तो बुद्धिहीन हैं, किन्तु हम उनके साथ क्यों युद्ध करें? हम तो बुद्धिमान हैं ! ये अब अर्जुन की दृष्टि में अनुचित वचन हैं। अभी तो वह तरह-तरह से उनके लिए अत्यन्त सम्मानसूचक सम्बोधनों का प्रयोग कर रहा है। पहले जो उन्हें सखा, यादव, कृष्ण आदि कहकर पुकार लिया करता था, इसके लिए अर्जुन के मन में अब ग्लानि हो रही है। वह कहता है – आपकी महिमा को नहीं जानते हुए आपको अपना अन्तरंग मित्र जानने के कारण, मुझसे यह भूल हुई। आप मुझे क्षमा करें। अर्जुन क्षमा माँगते हुए फिर कहता है – यदि मैंने हँसी में, बिना जाने-समझे आपका अपमान कर दिया हो, साथ-साथ चलते हुए, लेटे हुए, बैठे हुए, भोजन करते हुए, कभी-कभी अनजाने में हँसी-हँसी में कोई ऐसी बात कह दी हो, जिससे आपका अपमान हो गया हो, तो उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। जब कभी मैं अकेला आपसे ओझल रहा होऊँ या हे अच्युत! आपके सामने ही कुछ कहकर आपका अपमान कर दिया हो, उसके लिए भी क्षमा करें। आप तो महान हैं, अप्रमेय हैं। आपका पार नहीं पाया जा सकता। अपनी गलतियों के लिए मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ। क्योंकि –

भयभीत अर्जुन द्वारा भगवान से अपने उग्ररूप को संवरित करने की प्रार्थना

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।।४३।।
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।।४४।।
अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास।।४५।।
किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते।।४६।।

त्वम् अस्य चराचरस्य लोकस्य (आप इस चराचर जगत के) पिता च गरीयान् गुरुः पूज्यः असि (पिता और महान गुरु अति पूजनीय हैं) अप्रतिमप्रभाव लोकत्रये त्वत्समः अपि अन्यः न अस्ति (हे अनुपम प्रभाववाले ! तीनों लोकों में आपके समान ही दूसरा कोई नहीं है) अभ्यधिकः कुतः (बड़ा कैसे हो सकता है?)

तस्मात् अहम् कायम् प्रणिधाय प्रणम्य (अतएव मैं शरीर को गिरा कर प्रणाम करके) ईड्यम् त्वाम् ईशम् प्रसादये (प्रणाम करके स्तुतियोग्य आप ईश्वर की प्रसन्नता के लिए प्रार्थना करता हूँ) देव पिता इव पुत्रस्य (हे देव ! पिता जैसे पुत्र को) सखा इव सख्युः प्रियः प्रियायाः (सखा जैसे सखा को, पति जैसे पत्नी को) सोढुम् अर्हसि (क्षमा करने योग्य हैं)।

''आप इस चराचर जगत के पिता और महान गुरु अति पूजनीय हैं, हे अनुपम प्रभाववाले! तीनों लोकों में आपके समान ही दूसरा कोई नहीं है (फिर) बड़ा कैसे हो सकता है?''

''अतएव मैं शरीर को गिरा कर प्रणाम करके स्तुतियोग्य आप ईश्वर की प्रसन्नता के लिए प्रार्थना करता हूँ। हे देव ! पिता जैसे पुत्र के, सखा जैसे सखा के, पति जैसे पत्नी के (अपराध सहन करते हैं, वैसे ही आप भी मेरे अपराध को) सहन करने योग्य हैं, मेरे अपराध क्षमा करने योग्य हैं।''

अदृष्टपूर्वम् दृष्ट्वा हृषितः अस्मि (अभूतपूर्व आश्चर्यमय रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूँ) च मे मनः भयेन प्रव्यथितम् (और मेरा मन भय से व्यथित हो रहा है) तत् देवरूपम् एव मे दर्शय (उस अपने चतुर्भुज विष्णुरूप को ही मुझे दिखाइए) देवेश जगन्निवास प्रसीद (हे देवेश ! हे जगन्निवास ! प्रसन्न होइए) अहम् तथा एव त्वाम् (मैं वैसे ही आपको) किरीटिनम् गदिनम् चक्रहस्तम् द्रष्टुम् इच्छामि (मुकुट, गदा और चक्र धारण किए देखना चाहता हूँ) विश्वमूर्ते सहस्रबाहो (हे विश्वरूप ! हे सहस्रबाहु !) तेन एव चतुर्भुजेन रूपेण भव (वही चतुर्भुजरूप होइए)।

''(आपके) अभूतपूर्व आश्चर्यमय रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भय से व्यथित हो रहा है। आप उस (अपने) चतुर्भुज विष्णु रूप को ही मुझे दिखाइये, हे देवेश ! हे जगन्निवास ! प्रसन्न होइए।''

''मैं वैसे ही आपको मुकुट, गदा और चक्र धारण किए देखना चाहता हूँ, हे विश्वरूप ! हे सहस्रबाहु ! (आप) वही चतुर्भुजरूप होइए।''

चराचर लोकों के आप साक्षात् पिता हैं। आप सबके पूज्य गुरु हैं। आप महान हैं। आपके समान कोई नहीं है। आपसे बढ़कर कौन हो सकता है? तीनो लोकों में आपका जो प्रभाव है, वह अप्रतिम है। आपके प्रभाव की समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। इसीलिए मैं नीचे गिरकर (साष्टांग दण्डवत) आपको प्रणाम करता हूँ। एकमात्र आप ही पूजनीय भगवान हैं। इसलिए मैं आपकी कृपा की याचना करता हूँ। जैसे प्रेम के कारण पिता अपने पुत्र को, सखा अपने सखा को, प्रिय अपनी प्रिया को क्षमादान देता है, इसी प्रकार मैं भी आपसे क्षमा-याचना करता हूँ। आप जानते हैं कि आप पर मेरी बहुत श्रद्धा है। जैसा पहले कभी भी देखा नहीं गया, ऐसा आपका आश्चर्यमय रूप देखकर मैं हर्षित हो रहा हूँ। इसके साथ मेरे मन में भय भी हो रहा है। आपका अद्भुत, अलौकिक, अदृष्टपूर्व रूप देखा। यह रूप-दर्शन ऐसा ही है, मानो बर्फीली नदियों को पार करते हुए गोमुख से होकर नन्दनवन, तपोवन तक पहुँचते हैं, तो प्रकृति के अद्भुत सौन्दर्य को देखकर हर्ष भी बहुत होता

है, पर भय भी लगता है कि कहीं पाँव न फिसले, गिर न जाएँ। इसी तरह भगवान के रूप को देखकर अर्जुन के मन में हर्ष और भय दोनों के भाव आते हैं। इस रूप को अर्जुन अधिक देर तक देखना नहीं चाहता। इसीलिए भगवान से कहता है कि आपको देखा। आपके इस रूप को देखकर हर्षित भी हुआ, पर अब आप अपने इस रूप को संवरित करके हे देवेश ! प्रसन्न हो जाइये।

अर्जुन द्वारा भगवान से अपने चतुर्भुज रूप को धारण करने की प्रार्थना

मैं आपको उसी मुकुटधारी तथा हाथ में गदा, चक्र रखनेवाले रूप में देखना चाहता हूँ। इसलिए हे विश्वरूप! हे सहस्त्रबाहो ! आप उसी चतुर्भुजरूप में प्रकट होइये। गीता में तो अर्जुन दो हाथवाले कृष्ण को ही देखता है। उनका चतुर्भुजरूप उसने कैसे जाना? एक बार तो अपने जन्म के समय कारागार में अपनी माँ देवकी के सामने भगवान चतुर्भुजरूप हुए थे, ऐसा वर्णन मिलता है। भगवान को सहस्त्रबाहु सम्बोधन करके अर्जुन यह बता रहा है कि हजार बाहुओंवाला उनका विराट् रूप नहीं, उनका दिव्य चतुर्भुज रूप वह देखना चाहता है। भगवान कृष्ण उसके सामने खड़े हैं, बस दृष्टि का अन्तर है। दिव्य चक्षुओं के रहने के कारण अर्जुन भगवान के विश्वरूप को ही देख रहा है, मनुष्यरूप को नहीं देख पा रहा है। भगवान कृष्ण में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। वे तो वहाँ पर वैसे ही बैठे हुए हैं। दोनों ओर की सेनाएँ अर्जुन और कृष्ण को देख रही हैं। भगवान कृष्ण अपने हाथों में घोड़ों की रास थामे हुए हैं और पीछे की ओर मुड़कर अर्जुन से बातें कर रहे हैं। अर्जुन अपने सिर पर हाथ रखकर शोकग्रस्त, विचारग्रस्त-सा अपने रथ के पीछेवाले भाग में बैठा हुआ है। इस दृश्य को दोनों ओर की सेनाएँ देख रही हैं।

प्रश्न उठता है कि जब दोनों सेनाओं के इतने लोग कृष्ण का यह रूप देख रहे हैं, तो अर्जुन को उनका विश्वरूप कैसे दिखाई दे रहा है? इसका अर्थ यही है कि अर्जुन को दिव्यचक्षु मिले हुए हैं, उनके कारण वह भगवान के उस लौकिक रूप को नहीं देख सक रहा है, बल्कि उनके विराट्रूप का दर्शन कर रहा है। मान लीजिए हमारी आँखों से एक्स-रे निकलने लगें, तब क्या होगा? अभी तो हमें मनुष्य का जो रूप है, वह दिखाई दे रहा है। यदि हमारी आँखों से एक्स-रे की किरणें निकलने लगें, तब हम यदि किसी पदार्थ की ओर देखेंगे, जीव की ओर देखेंगे, तो उसका केवल ढाँचा हमें दिखाई देगा। बाहरी आवरण नहीं दिखाई देगा।

सिर पर मुकुट धारण किए हुए और हाथों में गदा और चक्र लिए हुए भगवान का चतुर्भुजरूप हुआ था, जब वे नारायण के रूप में प्रकट हुए थे। अर्जुन को सम्भवत: इस बात का ज्ञान है। भागवत में वर्णन आता है कि कारागार में देवकी के गर्भ से भगवान चतुर्भुजरूप में प्रकट होते हैं। वे गदा, चक्र, शंख और पद्म अपने चारों हाथों में रखते हैं। यह भी प्रसंग आता है कि उस समय वसुदेव और देवकी उनसे प्रार्थना करते हैं कि भगवन् ! चर्मचक्षुओं से आपका यह रूप नहीं दिखना चाहिए। उनके अनुरोध पर भगवान नारायण अपने चतुर्भुजरूप का संवरण करके द्विभुजरूप में ही उनके समक्ष आते हैं। उनकी समस्त व्रज-लीलाओं में कहीं पर भी भगवान के चतुर्भुजरूप में प्रकट होने का उल्लेख नहीं मिलता। **(क्रमश:)**

पृष्ठ २३४ का शेष भाग

अर्थ यह था कि मेरे जैसे दम्भी व्यक्ति का मस्तक किसके चरणों में अवनत हुआ। यह किसका आश्रय मुझे प्राप्त हुआ, जिस आश्रय में मेरा समस्त भय दूर हो गया है?'' मेरे प्रश्न के उत्तर में परमहंस देव ने कहा, ''मुझे कोई-कोई रामप्रसाद कहते हैं, कोई कहता है – 'राजा रामकृष्ण'। मैं यहीं रहता हूँ।'' मैं प्रणाम करके लौटने लगा, वे उत्तर के बरामदे तक मेरे साथ आए। तब मैंने उनसे पूछा, ''मैंने आपका दर्शन कर लिया है, फिर मुझे जो करना होता है, वह करना होगा?'' ठाकुर ने कहा, ''वह करते रहो।'' उनकी बात से मेरे मन में हुआ कि जो करता हूँ, वह करने पर दोष स्पर्श नहीं करेगा। **(क्रमश:)**

सन्दर्भ ग्रन्थ – ६६. श्रीरामकृष्ण-भक्तमालिका, पृ. ३५५ **६७.** वही, पृ. ३५७ **६८.** वही, पृ. ३५८ **६९.** वही **७०.** ठाकुर श्रीरामकृष्ण ओ स्वामी विवेकानन्द – गिरिशचंद्र घोष, संपादन: शंकरी प्रसाद बसु, विमल कुमार घोष, पृ. १२ **७१.** श्रीरामकृष्ण पूंथी, पृ. ४६२-६३ **७२.** ठाकुर श्रीरामकृष्ण ओ स्वामी विवेकानन्द, पृ. ११ **७३.**वही, पृ. ३ **७४.** वही, पृ. ३-४ **७५.** वही, पृ. ६ **७६.** वही **७७.** वही, पृ. ७-८ **७८.** वही, पृ. ८-९

श्रेयांसि बहुविघ्नानि

स्वामी गुणदानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

जैसे ही आप कुछ अच्छा कार्य करना प्रारम्भ करेंगे, पहले कई कठिनाइयाँ आएँगी। याद रखना, 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि।' श्रेयस्कर कार्य में कई तरह के विघ्न आते हैं इसलिए अच्छे कार्यों को छोड़ने की बात नहीं सोचनी चाहिए। उसके लिए आवश्यक है कि आप थोड़ा समझौतावादी रवैया अपनाएँ। किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करने पर हमारे पास विकल्पों का अभाव नहीं है। यदि एक समाधान काम नहीं करता है, तो दूसरा करता है अगर यह काम नहीं करता है तो तीसरा, इस प्रकार एक के बाद एक विकल्पों की शृंखला स्वयं के लिए तैयार रखनी होगी। फिर देखिए, आपके द्वारा किया गया संकल्प पूरा होगा। आप निश्चित रूप से सफलता प्राप्त करेंगे। सभी क्षेत्रों में आपका उत्साह और आत्मविश्वास अधिक से अधिक बढ़ेगा। यह आत्मविश्वास भविष्य में आपके काम आएगा। यह आत्मविश्वास आपको भविष्य की चुनौतियों का सामना करने में मदद करेगा।

स्वामी विवेकानन्द की इस वाणी को हमेशा ध्यान में रखें – अपने आप पर विश्वास रखो और इस विश्वास के बल पर अपने पाँवों पर खड़े हो जाओ और शक्तिशाली बनो। आज हमें यही चाहिए।

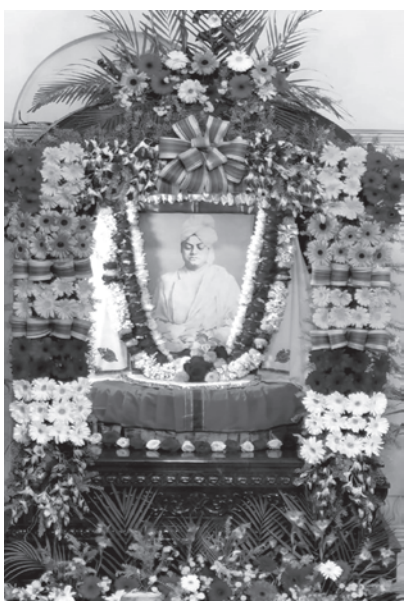

एक ऐसी लडकी जो न तो देख सकती थी, न बोल सकती थी और न ही सुन सकती थी, लेकिन उसमें विद्यालय और कॉलेज में हमेशा आगे बढ़ने की हठ थी। लोग उसके बारे में कहते थे कि वह अपने जीवन में कुछ नहीं कर सकती।

यह लडकी थी, २७ जून १८८० में अमेरिका की अलबामा में जन्मी हेलेन केलर। १९ महीने की होने पर हेलेन को एक भयंकर रोग ने आक्रान्त कर लिया और उन्हें नेत्रहीन तथा मूक-बधिर कर दिया। लेकिन हेलेन ने हार नहीं मानी और इस चुनौती को स्वीकार किया।

हेलेन का अन्तर्मन उनसे यही कहता कि तुम बहुत कुछ कर सकती हो। उन्होंने नकारात्मक बातें नहीं सुनी। उन्होंने अपने अन्तर्मन की सकारात्मक ध्वनि की अनुभूति की और आगे बढ़ती गयीं।

उनके इसी सकारात्मक दृष्टिकोण ने उन्हें साहस दिया। उन्होंने ब्रेल लिपि के द्वारा अध्ययन करना सीखा और आठ भाषाओं में ज्ञान अर्जित किया। नेत्रहीन और मूक-बधिर होने के बावजूद हेलेन ने इतना ज्ञान अर्जन किया और अपने दैनन्दिनी कार्यों को करने के लिये कभी दूसरों पर निर्भर नहीं रहीं। वे अपना हर कार्य स्वयं करती थीं। जैसे, रसोई में रखे बर्तनों को बिना देखे उठा लेती थीं और अपने लिये चाय आदि स्वयं बना लेती थीं।

आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए कुछ उपाय करने होंगे। अपने विचारों को किसी लक्ष्य पर केन्द्रित करने का प्रयास करते रहें। हम कल्पना के धनी हैं। लेकिन अधिकांश समय हम उसका ठीक से उपयोग नहीं कर पाते हैं। इसके विपरीत इस शक्ति के दुरुपयोग के कारण हमें अनेक प्रकार की परेशानियों और कष्टों का सामना करना पड़ता है।

हेलेन ने अपनी दिव्यांगता की दीवार को लाँघकर अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया। कुछ लोग कहते थे कि उनमें कोई दैवीय शक्ति थी जो सदैव उनका साथ देती थी।

हेलेन अपनी आँखों की अन्धता का सामना करती हुई विश्वप्रसिद्ध लेखिका बन गई। अपनी सफलता का प्रकाश पूरे विश्व में फैला दिया। हेलेन ने ९ पुस्तकें लिखीं। उनके लिखे प्रत्येक शब्द उनके हृदय की ध्वनि को प्रकट करते हैं।

उनकी लिखी पुस्तकें इतनी अधिक प्रसिद्ध हो गईं कि उनका पचास भाषाओं में अनुवाद किया गया और पूरे विश्व में उनकी पुस्तकें सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों में से एक हो गई।

हेलेन की कलम ही उनकी बैसाखी थी। उन्होनें अपनी उदासी को स्वयं पर हावी नहीं होने दिया। बल्कि पीड़ा ही उनके जीवन की पतवार थी, जिसके सहारे उन्होंने जीवन की नदियाँ पार की। उनकी लिखी किताब इतनी बिकी कि वे गरीब से अमीर हो गईं।

हेलेन केलर

हेलेन केलर की पीड़ा उनकी लिखी पुस्तकों में स्पष्ट दिखती है। उसकी लिखी किताब 'द स्टोरी ऑफ माई लाइफ' जब छपी तो पूरे विश्व में खलबली मच गयी। लोगों को यह पता चल गया था कि एक अद्भुत लेखिका ने इस पृथ्वी पर पदार्पण किया है।

हेलेन केलर के पास अन्तर्मन की आँखें थीं। उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकों को पढ़ने से यह पता ही नहीं लगता कि इन पुस्तकों को लिखने वाली नेत्रहीन है।

उनकी लिखी पुस्तकों में प्रकृति का वर्णन इस सजीवता से मिलता है जैसे कि वे उन्हें स्वयं देख पा रही हों। हेलेन केलर रविन्द्रनाथ टैगौर से अत्यधिक प्रभावित थीं। हेलेन केलर की तुलना भारतीय गीतकार रविन्द्र जैन जी से की जा सकती है, क्योंकि उन्होनें भी नेत्रहीन होने के बावजूद सैकड़ों कर्णप्रिय गीत लिख थे।

हेलेन केलर जैसी लेखिका के प्रेरणादायक जीवन से प्रेरित 'ब्लैक' नामक एक फिल्म भारत में वर्ष २००५ में बनी। इस महान् लेखिका का जीवन निश्चित रूप से शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्तियों के लिये ही नहीं, बल्कि हर उस व्यक्ति के लिए प्रकाशस्तम्भ है, जो अपने जीवन से निराश हैं, हताश हैं।

हेलेन केलर का जीवन के बारे में एक अनूठा दृष्टिकोण था। हेलेन केलर के अनुसार इस प्रकृति के सौन्दर्य को न देखा जा सकता हैं और न ही उसे स्पर्श किया जा सकता है, उसे केवल अनुभव किया जा सकता है। जिनका जीवन अन्धकारमय था, वे दूसरों के जीवन में उजाला भर गयीं। हेलेन केलर के जीवन की प्रेरणा की सुरभि चारों दिशाओं में बिखर गयी।

बहुत से लोगों की इच्छा होती है कि वे अपने दिवास्वप्नों का आनन्द लें, अपने मन में भावनाओं की पतंग उड़ाते रहें। साथियों, यदि आप ऐसी निरर्थक, लक्ष्यहीन और मनमानी कल्पनाओं या इस प्रकार की विचार की स्थिति में हैं, तो उसी समय सावधान हो जाइए।

काल्पनिक आशाओं और आकांक्षाओं को निश्चयपूर्वक अपने मन से निकाल दें, वास्तव में इनका कोई आधार नहीं होता, बल्कि आपको निराशा ही हाथ लगती है और मन पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जो कई दिनों तक बना रहता है।

दिन में कितने समय हम वास्तविकता में रहते हैं और कितना समय स्वप्नों के संसार, काल्पनिक संसार में? इसके बारे में जागरूक रहें, यह सुनिश्चित करें कि यह आपके लिए बहुत लाभकारी होगा। क्योंकि एक बार जब आप अपने विचारों और भावनाओं को नियंत्रित करना प्रारम्भ कर देते हैं, तो उन्हें नियंत्रित करना आसान हो जाता है। आप अनभुव करेंगे कि जो विचार आपके आत्मविश्वास को प्रभावित कर रहे हैं, आप उन्हें अपने मन, मस्तिष्क से बाहर निकाल पाएँगे। साथ ही आपको वास्तविक संसार और अपने आन्तरिक विश्व को समन्वित करने की कला भी आ जाएगी, जिससे आपका आत्मविश्वास कई गुना बढ़ जाएगा।

हेलेन केलर के विचार थे, ''संसार की सबसे सुन्दर चीजें न तो देखी जा सकती हैं और न तो छीनी जा सकती हैं, वह तो केवल और केवल हृदय से अनुभव की जा सकती हैं।

जो कुछ भी तुम्हारे भीतर अच्छा है उसे अपने प्रयासों से प्रकट करो, लेकिन दूसरों का अनुकरण मत करो। दूसरे शब्दों में, हमें वह स्वीकार करना चाहिए, जो दूसरों में अच्छा है, उसे हमें उनसे सीखना चाहिए।

महान् लोगों की जीवनियों की अनेक प्रेरक घटनाओं का अपना-अपना महत्त्व होता है। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (३४)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

सत्यम् एवम् अयं दोषो यद्यपि स्यात् स्वप्ने केवलतया स्वयंज्योतिष्ट्वेन अर्धं तावद् अपनीतं भारस्य इति चेत्।

शंका – ठीक है, यद्यपि ऐसा दोष हो सकता है, परन्तु स्वप्न में स्वयंप्रकाशता होने के कारण उसके दोष रूपी भार का केवल आधा कट जाता है, यदि ऐसा कहें तो !

भाष्य – न तत्रापि 'पुरीतति शेते' (बृहदा. २/१/१९) इति श्रुतेः पुरीतत्-नाडी-सम्बन्धात् अत्र अपि पुरुषस्य स्वयं-ज्योतिष्ट्वेन अर्ध-भार-अपनय अभिप्रायो मृषा एव।

उत्तर – ऐसी बात नहीं है, क्योंकि (स्वप्न में) वह 'पुरीतत् (नाड़ी) में शयन करता है', इस श्रुति-वाक्य के आधार पर पुरीतत् नाड़ी से सम्बन्ध रखनेवाले इस (सुषुप्ति-अवस्था में) भी 'पुरुष' के स्वयं-ज्योतिष्टता के आधा भार को दूर करने का अभिप्राय भी मिथ्या है।

शंका – कथं तर्हि 'अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः' (बृहदा. ४/३/१४) इति।

– तो फिर ऐसा क्यों कहा गया कि ''इस अवस्था में वह पुरुष स्वयंज्योति है?''

मध्यस्थ – अन्य-शाखात्वाद्-अनपेक्षा सा श्रुतिः इति चेत्।

– यदि ऐसा कहें कि उपरोक्त श्रुति अन्य (यजुर्वेदीय काण्व) शाखा का होने के कारण इस प्रसंग में लागू नहीं होगा, तो !

शंका – न; अर्थ-एकत्वस्य इष्टत्वाद् एको हि आत्मा सर्व-वेदान्तानाम्-अर्थो विजिज्ञापयिषितो बुभुत्सितः च। तस्मात् युक्ता स्वप्न आत्मनः स्वयंज्योतिष्ट्व-उपपत्तिः वक्तुम्। श्रुतेः यथार्थ-तत्त्व-प्रकाशत्वात्।

– नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, चूँकि आत्मा के 'एकत्व' को समझाना और जानना ही समस्त वेदान्त का एकमात्र उद्देश्य है; अत: स्वप्न में आत्मा की स्वयंज्योतिता को स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि श्रुतियाँ तो यथार्थ तत्त्व को ही प्रकट करनेवाली हैं।

समाधान – एवं तर्हि शृणु श्रुति-अर्थं हित्वा सर्वम् अभिमानं न तु अभिमानेन वर्षशतेन अपि श्रुति-अर्थो ज्ञातुं शक्यते सर्वैः पण्डितम्मन्यैः। यथा – हृदय-आकाशे पुरीतति नाडीषु च स्वपतः तत्-सम्बन्ध-अभावात् ततो विविच्य दर्शयितुं शक्यते इति आत्मनः स्वयंज्योतिष्ट्वं न बाध्यते।

– यदि ऐसी ही बात है, तो सारे अहंकार को छोड़कर श्रुति का अर्थ सुनो – क्योंकि पण्डित्य का मिथ्या अभिमान रखनेवाले सभी लोगों द्वारा सौ वर्ष तक प्रयास करने पर भी श्रुति का अर्थ समझ पाना सम्भव नहीं है। जैसे कि – वह (सुषुप्ति के समय और स्वप्नकाल में) हृदय-आकाश में पुरीतत् नाड़ी में सोनेवाले के बीच (आत्मा के) सम्बन्ध-भाव को दिखाने में समर्थ है, इस प्रकार आत्मा की स्वयंज्योतिता में कोई बाधा नहीं आती।

एवं मनसि अविद्या-काम-कर्म-निमित्त-उद्भूत-वासनावति कर्म-निमित्ता-वासना-अविद्यया-अन्यत्-वस्तु-अन्तरम् इव पश्यतः सर्व-कार्य-करणेभ्यः प्रविविक्तस्य द्रष्टुः वासनाभ्यो दृश्य-रूपाभ्यो अन्यत्वेन स्वयंज्योतिष्ट्वं सु-दर्पितेन अपि तार्किकेण न वारयितुं शक्यते। तस्मात् साधु-उक्तं मनसि प्रलीनेषु करणेषु अप्रलीने च मनसि मनोमयः स्वप्नान् पश्यति इति।

– इस प्रकार अविद्या-कामना-कर्म के फलस्वरूप उत्पन्न वासनाओं से युक्त मन में कर्म के लिए जो वासना है, उसे अविद्या के फल के रूप में अन्य वस्तु की भाँति देखनेवाले समस्त कार्य तथा करणों से भिन्न और वासनाओं को दृश्य के रूप में (स्वयं से) पृथक् देखनेवाले द्रष्टा (आत्मा) की स्वयं-प्रकाशता का अत्यन्त अहंकारी तार्किक के द्वारा भी निवारण नहीं किया जा सकता। अत: यह उचित ही कहा

है – करणों (इन्द्रियों) के मन में लीन होने पर (भी), मन के लीन न होने के कारण, वह मनोमय होकर स्वप्नों को देखता है।

कथं महिमानम् अनुभवति इति उच्यते; यन्-मित्रं पुत्रादि वा पूर्वं दृष्टं तद्-वासना-वासितः पुत्र-मित्र-आदि-वासना-समुद्भूतं पुत्रं मित्रम् इव वा अविद्यया पश्यति इति एवं मन्यते। तथा श्रुतम् अर्थं तद्-वासनया-अनुशृणोति इव।

अब बताया जा रहा है कि (मन) किस प्रकार उस महिमा (विभिन्न अभिव्यक्तियों) का अनुभव करता है – जिन वासनाओं (संस्कारों) के प्रभाव से, (उसने) पहले मित्र या पुत्र को देखा गया था, अविद्या के कारण (स्वप्न में) वह उन्हीं वासनाओं से उत्पन्न हुए पुत्र-मित्र आदि को वास्तविक के रूप में देखता है और मान लेता है। उसी प्रकार सुने हुए विषयों को भी, उनसे सम्बद्ध संस्कारों के अनुसार – पुनः सुनता प्रतीत होता है।

देशादिगन्तरैश्च देशान्तरैः दिगन्तरैः च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः तत् प्रत्यनुभवति इव अविद्यया। तथा दृष्टं च अस्मिन् जन्मनि अदृष्टं च जन्मान्तर-दृष्टम् इति अर्थः; अत्यन्त-अदृष्टे वासना-अनुपपत्तेः; एवं श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं च अस्मिन् जन्मनि केवलेन मनसा अननुभूतं च मनस एव जन्मान्तरे अनुभूतम् इत्यर्थः।

इसी प्रकार अन्य स्थान या दिशा में पहले अनुभूति किये हुए विषय को भी, अज्ञान के कारण मानो बारम्बार अनुभव करता है। वैसे ही इस जन्म में देखे हुए और न देखे हुए अर्थात् पिछले जन्मों में देखे हुए विषयों को क्योंकि पिछले जन्मों में न देखा हो, तो (उसकी) वासना नहीं उत्पन्न होगी – इस प्रकार सुने हुए, न सुने हुए तथा अनुभूति किये हुए विषयों को – अर्थात् इस जन्म में केवल मन के द्वारा अनुभव किये गए और जो कुछ नहीं देखा गया, उसे मन के द्वारा ही किसी अन्य जन्म में अनुभव किया गया था।

सत् च परमार्थ-उदक-आदि, असत् च मरीचि-उदक-आदि। किं बहुना उक्तान् उक्तं सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति सर्व-मनो-वासना-उपाधिः सत्-एवं सर्व-करण-आत्मा मनोदेवः स्वप्नान् पश्यति।।५।।

सत् क्या है? – जैसा कि वास्तविक जल आदि और असत् क्या है? – जैसा कि मरीचिका का जल आदि। अधिक क्या कहें – वह – मन-देवता – कहे हुए और न कहे हुए – सब कुछ को देखता है, सर्वरूप मन तथा वासना की उपाधि से युक्त होकर, सभी इन्द्रियों के साथ तादात्म्य करके – वह सपनों को देखता है।।४/५।। **(क्रमशः)**

पृष्ठ २३० का शेष भाग

मुँह एक आरी से टकरा गया और साँप घायल हो गया। हम जैसा जानते हैं, साँप क्रोधी स्वभाव का होता है। जैसे ही साँप को चोट लगी, उसने क्रोध में आरी पर फिर से पलटवार किया। इस प्रकार आरी पर बार-बार प्रहार करने के कारण उसका मुँह लहूलूहान हो गया। साँप को इससे और अधिक क्रोध आया और उसने आरी को अपने शरीर से लपेट लिया।

सुबह जब बढ़ई अपनी दुकान का दरवाजा खोला और सामने साँप को आरी से लिपटा मरा पाया, तो उसे यह समझते देर नहीं लगी कि साँप अपने क्रोध के कारण ही उस आरी से लिपटकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

छोटे बच्चे बात-बात में क्रोध करते है। समान को इधर-उधर फेंकते है, माँ-पिताजी को उलटा-सीधा बोलते हैं। बच्चो! आप आज यह प्रतीज्ञा लो कि तुम कभी भी क्रोध नहीं करोगे, क्योंकि इससे तुम्हारी ही क्षति होती है।

बच्चो ! इससे हमें यह सीख मिलती है कि क्रोध में हम दूसरों की हानि पहुँचाने के बजाय स्वयं का ही क्षति करते है।

तो अब आप समझ गए होंगे कि जब हम अपने आप को शान्त रखकर समानता का भाव रखते हैं, तब हमारे भीतर एकाग्रता, सच्ची सोच, कार्यकुशलता, अच्छी वाणी और सही दिशा का विकास होता है, इससे हम स्वयं पर जीत प्राप्त करेंगे। यह सब करने के लिए हमें प्रतिदिन ध्यान करना चाहिए, अच्छी पुस्तकें पढ़नी चाहिए, अच्छी संगति करनी चाहिए जिससे हमारा मन संयमित रहे और हम सही रास्ते पर चलते हुए प्रगति करें। दिन-रात अपने मस्तिष्क को उच्च कोटि के विचारों से भरें, इससे जो फल प्राप्त होगा, वह निश्चित ही विलक्षण होगा। ○○○

विनोदप्रिय श्रीरामकृष्ण

डॉ. अवधेश प्रधान

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(गतांक से आगे)

डॉ. महेन्द्र लाल सरकार की निष्ठा आधुनिक विज्ञान में थी। वे अवतार को नहीं मानते थे। अनेक भक्तों से तर्क करते थे, श्रीरामकृष्ण को भी अवतार घोषित करने के विरुद्ध थे। ईशान मुखर्जी ने डॉ. सरकार से कहा – आप अवतार क्यों नहीं मानते? अभी तो आपने कहा, जिन्होंने विभिन्न रूपों की सृष्टि की है, वे साकार हैं और जिन्होंने मन की सृष्टि की है, वे निराकार हैं।

डॉ. महेन्द्र लाल सरकार

अभी-अभी तो आपने कहा – ईश्वर के लिये सब कुछ सम्भव है। इस पर श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए कहा – ''ईश्वर अवतार ले सकते हैं, यह बात इनके सायन्स में नहीं जो है, फिर भला कैसे विश्वास हो?'' (सब हँसते हैं) फिर उन्होंने एक कहानी सुनाई – ''किसी ने आकर कहा, 'अरे, उस मुहल्ला में मैं देखकर आ रहा हूँ – अमुक का घर धँसकर बैठ गया है!' जिससे उसने यह बात कही, वह अंग्रेजी पढ़ा हुआ था। उसने कहा – 'ठहरो, जरा अखबार देख लूँ।' अखबार उलट कर उसने देखा, वहाँ कहीं कुछ न था। तब उसने कहा, 'चलो जी, तुम्हारी बात का हमें विश्वास नहीं। कहाँ, घर के धँसकर बैठ जाने की बात अखबार में तो नहीं लिखी है? यह सब झूठ खबर है!' (सब हँसे) (श्रीरामकृष्ण वचनामृत, पृ.१०३७)। साइन्स, अंग्रेजी, अखबार, आधुनिक सभ्यता के तीनों प्रमाण एक साथ खण्डित। लोकदर्शी श्रीरामकृष्ण ने लक्ष्य कर लिया था – सत्य की अवमानना पुराने जमाने के पंडित कर्मकाण्ड, संस्कृत ज्ञान और शास्त्रों के जोर से करते हैं, तो नए जमाने के पंडित साइन्स, अंग्रेजी और अखबार के जोर से।

विजयकृष्ण गोस्वामी साधारण ब्राह्म समाज के आचार्य थे, जगह-जगह उपदेश, व्याख्यान आदि की व्यस्तता के कारण समय नहीं मिलता। इस पर श्रीरामकृष्ण ने कहा – ''तुम लोग आचार्य हो, दूसरे को छुट्टी भी मिलती है, परन्तु आचार्य को छुट्टी नहीं मिलती। नायब जब एक ताल्लुक की अच्छी व्यवस्था कर लेता है, तब जमींदार उसे दूसरे ताल्लुक की व्यवस्था के लिये भेजता है। इसीलिये तुम्हें छुट्टी नहीं मिलती।'' (सब लोग हँसते हैं) (वही, पृ.६४८)

प्रतापचन्द्र हाजरा को लेकर श्रीरामकृष्ण प्राय: चुटकी लिया करते थे। एक दिन उन्होंने भक्तों से कहा – ''हाजरा कुछ कम नहीं है। अगर यहाँ (स्वयं को साक्ष्य करके) कोई बड़ी दरगाह है, तो हाजरा छोटी दरगाह है।'' (सब हँसते हैं) (वही, पृ.१४३)

विजयकृष्ण गोस्वामी

अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा तत: किम् – (अन्दर-बाहर यदि श्रीहरि हैं, तो तपस्या की क्या आवश्यकता है?) – यह सुनना श्रीरामकृष्ण को बहुत पसंद था। हाजरा महाशय सब जगह सकार लगाकर उच्चारण करते थे – अन्तस बहिस यदि हरिस तपसा तत: किम्। इसी का उल्लेख करते हुए श्रीरामकृष्ण ने रामलाल से कहा- ''क्यों रे रामलाल,

हाजरा ने कैसे कहा था – अंतस् बहिस् यदि हरिस् (सकार लगाकर)? कैसा किसी ने कहा था – मातारं भातारं खातारं अर्थात् माँ भात खा रही है।'' (सब हँसते हैं) (वही, पृ० ६८७)

नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) को हाजरा महाशय से सहानुभूति थी। वे प्राय: उनके पास बैठकर बातचीत करते थे। एक दिन ऐसी ही स्थिति में श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र से पूछा – ''तू क्या हाजरा के पास बैठा था? तू विदेशी है और वह विरही ! हाजरा को भी डेढ़ हजार रूपये की आवश्यकता है।'' (हँसी) उस समय नरेन्द्र भी घर के अभाव से कष्ट पा रहे थे। हाजरा महाशय को एक ओर घर का ऋण चुकाने की चिन्ता थी, दूसरी और अपनी उच्च आध्यात्मिक अवस्था का दावा भी जबरदस्त था ! इस पर श्रीरामकृष्ण ने कहा – ''हाजरा कहता है, नरेन्द्र में सोलह आना सतोगुण आ गया है, परन्तु रजोगुण के कारण जरा लाली है। मेरा विशुद्ध सत्त्व, सतरह आना।'' (सभी की हँसी) (वही, पृ.८१८)

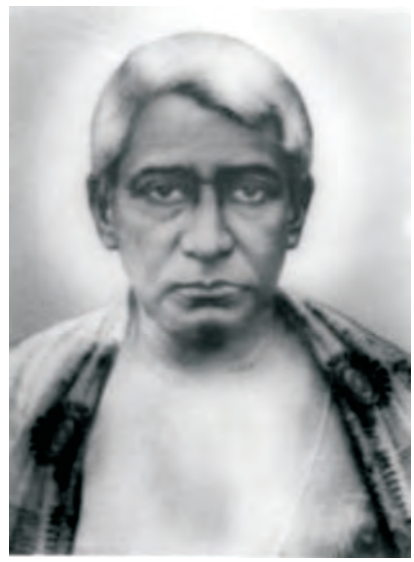

ईशान मुखर्जी

डॉ. महेन्द्रलाल सरकार स्वयं तो विज्ञान-निष्ठ थे ही; उन्होंने कलकत्ता में वैज्ञानिक चेतना के प्रसार के लिए एक संस्था भी बना रखी थी, एक पत्रिका भी निकालते थे। श्यामपुकुर में रखकर श्रीरामकृष्ण की चिकित्सा कराई जा रही थी, उसी समय वे ठाकुर के सम्पर्क में आये और धीरे-धीरे उनका आध्यात्मिक रूपान्तरण हुआ। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपने प्रेम से, कभी आलोचना, कभी हास्य-विनोद, कभी मधुर वार्तालाप से और सर्वोपरि अपनी शक्ति से आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ाया। उनकी परस्पर विनोद-वार्ता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

१८ अक्तूबर, १८८५ का प्रसंग है। ठाकुर ने डॉ. सरकार को एक दृष्टान्त सुनाया, डॉ. सरकार ने उसकी प्रशंसा की, बड़ी सुन्दर बात है। ठाकुर ने कहा, एक बार 'थैंक यू' भी तो कहो। डॉक्टर ने कहा – क्या आप मेरे मन का भाव नहीं समझ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण – नहीं जी, मूर्ख के कल्याण के लिये भी तो कहो।

डॉ. सरकार ने पूछा – यहाँ मूर्ख है कौन?

श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए कहा – नहीं जी, यहाँ शंख भी हैं, शम्बुक भी हैं। (सब हँसते हैं) (वही, पृ.१०२४-२५)

२२ अक्तूबर, १८८५ का प्रसंग। ठाकुर ने उपदेश दिया – जितना ही विश्वास बढ़ेगा, ज्ञान भी उतना ही बढ़ता जाएगा। सब कुछ खाने वाली गाय घर्र-घर्र दूध देती है। इस पर डॉ. सरकार ने तर्क किया – सब कुछ खाकर गौ का दूध बनना ठीक नहीं। उनकी गाय इसी तरह सब कुछ खाती थी, उसके दूध के सेवन से स्वास्थ्य खराब हो गया। बारिश में भीगी गधी का दूध पीने से एक बच्ची को कुकुर-खाँसी हो गई। श्रीरामकृष्ण ने नहले पर दहला फेंका – कहते क्या हैं, इमली के पेड़ के नीचे से मेरी गाड़ी निकल गई थी। इससे मेरा हाजमा बिगड़ गया था! (सब हँसे) डॉ. सरकार ने भी बात रखी – जहाज के कप्तान को बड़े जोर से सिर-दर्द हो रहा था। तब डॉक्टरों ने सलाह करके जहाज को दवा (बिलस्टर) लगा दी। (सब हँसते हैं) (वही, पृ.१०३८-३९)

सच्चे, सरल और नि:स्वार्थ व्यक्ति को अपना मजाक बनाने में भी आनन्द आता है। उद्देश्य रहता है सबको आनन्दित करना; आनन्द के उत्सव में सबको सम्मिलित करना। ईशान मुखर्जी को ईश्वर पर बड़ा विश्वास था। ठाकुर ने चुटकी लेते हुए कहा – ''तुम्हें बड़ा विश्वास है। हम लोगों को इतना नहीं है।'' (सब हँसते हैं) (वही, पृ.७६७)

दक्षिणेश्वर में कोई भक्त टोकरी भर जलेबी लाए थे। श्रीरामकृष्ण ने उसमें से एक टुकड़ा तोड़कर खाया, फिर हँसते हुए कहा, ''देखा, मैं माता का नाम जपता हूँ, इसीलिए ये सब चीजें खाने की मिलती हैं।'' (हास्य) (वही, पृ.१३८)। उनकी यह सहज विनोद-वृत्ति असह्य रोग और पीड़ा में भी बनी रही। श्यामपुकुर में बीमारी के दौरान मास्टर महाशय उनको मोजा पहना रहे थे। श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए

कहा – मफलर को काटकर पैरों में न पहन लिया जाय, वह खूब गरम है। मास्टर महाशय भी हँसने लगे। (वही, पृ.१०४२)

श्यामपुकुर में वे रोगशय्या पर थे, बैठकखाने में कुछ भक्त गा रहे थे। जब सब लोग ठाकुर के कमरे में आये, तो उन्होंने कहा – ''तुम सब गा रहे थे, ताल ठीक क्यों नहीं रहता था? कोई एक बेताल सिद्ध था...'' (वही, पृ. १०२६)। डॉ. सरकार ने उन्हें खाने को दवा की दो गोलियाँ दीं, तो बोले – 'ये गोलियाँ दी है – प्रकृति और पुरुष !' (सब हँसते हैं) प्रकृति और पुरुष साथ रहते हैं...' (वही, पृ.१०२५)

नरेन्द्र के पिता की मृत्यु के बाद घर में बड़ा अभाव हो गया था, यहाँ तक कि अन्न-कष्ट रहने लगा था। वे घर का कुछ प्रबन्ध करने के बाद निश्चिन्त होकर पूर्ण त्याग का जीवन बिताना चाहते थे। नरेन्द्र की इस चिन्ता को लेकर श्रीरामकृष्ण मास्टर महाशय से बात करते हुए बोले, ''ईश्वर को मन दे देने पर वे सब व्यवस्था कर देते हैं। ...तीव्र वैराग्य होने पर यह हिसाब नहीं रहता।'' फिर दृष्टान्त दिया – ''एक स्त्री के ऊपर कोई बड़ा शोक आ पड़ा। पहले उसने नथ नाक से उतार कर सावधानी से कपड़े में लपेट कर बाँध ली और फिर लगी रोने, 'अरी मेरी मइया, मुझे यह क्या हुआ?' और यह कहकर पछाड़ खाकर गिर पड़ी – परन्तु वह भी सावधानी से कि कहीं बँधी हुई नथ टूट न जाय!' सुनकर सब हँसने लगे। उस समय नरेन्द्र वहाँ उपस्थित थे। उन पर ये बातें तीर की तरह चोट करने लगीं। वे एक ओर लेटे रहे। उनके मन की अवस्था समझ कर मास्टर ने हँस कर कहा – लेट क्यों रहे हो? नरेन्द्र की छटपटाहट और मास्टर की हँसी देखकर ठाकुर ने हँसते हुए मास्टर से कहा, ''यहाँ मुझे उस स्त्री की याद आती है, जो अपने बहनोई के साथ रहने में लाज के कारण मरी जाती थी। उसे यह समझ में ही नहीं आता था कि जब उसे इतनी शरम है, तो अन्य स्त्रियों को, जो पर-पुरुषों के साथ रहती हैं, कैसे शरम नहीं लगती। वह कहती थी, आखिर बहनोई तो अपने ही घर का आदमी है, परन्तु फिर भी तो मैं शरम से मरी जाती हूँ – और इन औरतों की हिम्मत कैसे पड़ती है कि ये दूसरे आदमियों के साथ रहें।'' पहला दृष्टान्त नरेन्द्र के लिए था, जो आध्यात्मिक लक्ष्य और सांसारिक कर्तव्य के अन्तर्द्वन्द्व में पड़े हुए थे, दूसरा दृष्टान्त मास्टर के लिए था, जो गृहस्थ होने के बावजूद नरेन्द्र के त्यागोन्मुख अन्त: संघर्ष पर हँस रहे थे। मास्टर साहब ने 'वचनामृत' में नोट किया – ''मास्टर खुद संसार में हैं, उसके लिये उन्हें लज्जित होना चाहिए। वैसा न होकर वे नरेन्द्र पर हँस रहे हैं। अपना दोष कोई नहीं देखता, दूसरे के दोष देखने के लिए दौड़ पड़ते हैं, यही बात श्रीरामकृष्ण के वाक्य से सूचित हो रही है।'' (वही, पृ.१०७७)

यहाँ उनके हास्यजनक दृष्टान्त का उद्देश्य है शिक्षा, लोक-शिक्षा। श्रीरामकृष्ण की विनोद-लीला के अनेक रंग हैं। एक रंग है मुक्त आनन्दोत्सव का, जब वे अपने अन्तरंग भक्तों के साथ खेल-कूद, नकल, नाच-गाना, वन-भोज आदि करते हैं। ७ मार्च, १८८५ का प्रसंग है – ''शुद्धात्मा भक्तों को प्राप्त कर श्रीरामकृष्ण आनन्द में मग्न हो रहे हैं। अपने छोटे तखत पर बैठे हुए कीर्तन गाने वाली के नाज-नखरे दिखा-दिखाकर उन्हें हँसा रहे हैं। कीर्तन गानेवाली सज-धज कर अपने साथियों के साथ गा रही है। वह हाथ में रंगीन रूमाल लिये हुए खड़ी है; बीच-बीच में खाँसने का ढोंग कर रही है और नथ उठाकर थूक रही है। गीत गाते समय अगर किसी विशिष्ट मनुष्य का आना होता है, तो वह गाते हुए ही उसकी अभ्यर्थना के लिये 'आइये, बैठिये' आदि शब्दों का प्रयोग करती है। फिर कभी-कभी हाथ का कपड़ा हटाकर बाजूबन्द, अनन्त आदि गहने दिखाती है। उनका यह अभिनय देखकर भक्तगण ठहाका मारकर हँस रहे हैं। पल्टू तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो रहे हैं। श्रीरामकृष्ण पल्टू की ओर देखकर मास्टर से कह रहे हैं, बाप से न कहना। नहीं तो फिर जो कुछ लगन (मेरे पास आने के लिये) है, वह भी न रह जाएगी। एक तो ऐसे ही वे लोग इंग्लिशमैन हैं!'' (वही, पृ.८४८)

भक्त बालकों के साथ अपनी विनोदवार्ता के बारे में वे सजग थे, इसका कारण 'कथामृत' में अंकित उनके शब्दों में इस प्रकार है, ''आमि एदेर (छोकरा देर) केवल निरामिष दिइ ना। माँझे माँझे आँष धोया जल एकटू एकटू दिइ। ता न होले आसबे केनो।'' कथामृत, पृ०) अर्थात् मैं इनको (बालक भक्तों को) केवल निरामिष नहीं देता। मछली का धोया पानी थोड़ा-थोड़ा देता हूँ। नहीं तो ये क्यों आएँगे?)

भक्तों के साथ अपनी इस विनोद लीला का रहस्य बताते

हुए उन्होंने एक दिन कहा था, ''भक्त की अवस्था में, विज्ञानी की अवस्था में मुझे रखा है, इसीलिये राखाल आदि से मजाक किया करता हूँ। ज्ञानी की अवस्था में रखने से यह बात न होती!'' (वही, पृ.४४८)

वे अपने गृहस्थ भक्तों के घर के बच्चों के साथ घुल-मिल जाते थे, उन्हें बच्चों के गीत सुनाते थे, उनसे बातचीत करके आनन्द मनाते थे। 'मातृगतप्राण प्रेमोन्मत्त बालक का स्वर्गीय नृत्य'– ठाकुर के आनन्द नृत्य की प्रशंसा इन शब्दों में की है मास्टर महाशय ने ! उनके नृत्य और कीर्तन की वेगवती धारा में ब्राह्म समाज की उपासना का समय भी टल जाता था – ''इस कीर्तनानन्द में सब नियम न जाने कहाँ बह गए।'' (वही, पृ.७३४)

कभी तो भक्तों के साथ उनका हँसी-मजाक, विनोदपूर्ण वार्तालाप होता था, जैसा श्रीराम का वानर-भालुओं के साथ होता था; जैसा श्रीकृष्ण का ग्वाल-बालों के साथ कभी नाच-गान, खेलकूद होता था; जैसे चैतन्यदेव का हरिभक्तों के साथ कभी उद्दाम नृत्य और कीर्तन होता था और कभी लोक-शिक्षा देते थे।

१९ सितम्बर, १८८४ के एक प्रसंग से श्रीरामकृष्ण देव की विनोद लीला की विभिन्न अवस्थाओं की पृष्ठभूमि का आभास मिलता है। उस दिन उन्होंने बालक भक्तों के साथ खूब हँसी-मजाक किया था। उन्हें चिन्ता हुई कि वहाँ उपस्थित मुखर्जियों को बुरा तो नहीं लगा; मास्टर महाशय ने उन्हें आश्वस्त किया कि आपकी बालक की अवस्था है। ईश्वर-दर्शन करने पर बालक की अवस्था हो जाती है। इस पर श्रीरामकृष्ण ने यह व्याख्या दी, ''और बाल्य, कैशोर और युवा। कैशोर अवस्था में हँसी-मजाक सूझता है। कभी कुछ मुँह से निकल जाता है। पर युवावस्था में सिंह की तरह लोक-शिक्षा देता है।'' (वही, पृ.६२४)

श्रीरामकृष्ण देव का हास्य-विनोद भी उनकी लोकशिक्षा का ही अंग था। दक्षिणेश्वर में उनके साथ बिताये दिनों की याद करते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते थे, ''ठाकुर के संग में किस प्रकार आनन्द से दिन बीतते थे, दूसरों को समझना कठिन है। खेल, हँसी, विनोद आदि साधारण विषयों द्वारा उन्होंने किस तरह निरन्तर उच्च शिक्षा देकर अनजान में हमारे आध्यात्मिक जीवन के गठन में सहायता की थी, इस सम्बन्ध में आज सोचने पर हमें बहुत आश्चर्य होता है। ...और केवल ध्यान-धारण ही नहीं, खेल-मनोरंजन में भी हम वहाँ कुछ समय बिताया करते थे। उस समय भी वे हमारे साथ सहयोग देकर हमारा आनन्दवर्धन किया करते थे।'' (स्वामी सारदानन्द, श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग-२, पृ० ८८३-८८४)।

○○○ (समाप्त)

जप कई प्रकार से किया जा सकता है। साधक जोर से उच्चारण करके मन्त्र जप कर सकता है, कम-से-कम इतने जोर से कि वह स्वयं उसको सुन सके। यह वाचिक जप कहलाता है। अथवा वह होंठों को हिलाते हुए मुँह ही मुँह में बोलकर जप कर सकता है। ऐसा जप उपांशु जप कहलाता है। तीसरी विधि बिना जिह्वा और होंठों को हिलाए मन ही मन मन्त्र का जप करना है। ऐसा ध्वनिरहित जप मानसिक जप कहलाता है। मानसिक जप निश्चित रूप से श्रेष्ठतम है, लेकिन जिन्हें वह कठिन लगे, वे अन्य दो विधियों से जप कर सकते हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि साधक को जप करते समय अपनी चेतना के केन्द्र को पकड़े रखना चाहिए।

– स्वामी यतीश्वरानन्द, ध्यान और आध्यात्मिक जीवन

काव्य-लहरी

आओ आओ रामकृष्ण प्रभु

ओमप्रकाश वर्मा

आओ आओ रामकृष्ण प्रभु, आओ प्रभु तुम कृपानिधान।
मेरे उर में सदा बसो प्रभु, कर दो विषय-भोग अवसान।।
देव देव तुम त्रितापहारी, हृदयकमल में विराजमान।
मायामोहित जग-जन को प्रभु, देते तुम ईश्वर का ज्ञान।।
पूर्णकाम भूताधिवास तुम, सच्चित-सुख के हो अभिधान।
निष्प्रपंच तुम अज-अविनाशी, योगी जन के चिर कल्यान।।
अखिल विश्व के तुम वैभव प्रभु, त्यागवृत्ति के हो आख्यान।
तुम ही सर्वचराचरपालक, प्रणतजनों के तुम हो प्रान।।
मैं तव चरणों का सेवक प्रभु, चाहूँ तव चरणों में स्थान।
कृपा करो प्रभु दीन दयामय, कर दो मम भवरोग-निदान।।

हमको दास बना लो

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

हे हरि! हमको दास बना लो।
तन से सबकी सेवा होये, मन निर्मल पावन बन जाए।
मति में शुभ संकल्प सदा हो, अहंकार-दशमुख जल जाए।
सन्तों की सन्तत सेवा हो, ऐसा हृद्-हनुमान बना लो।
हे हरि ! हमको दास बना लो।
चक्रधारि उर-पुर बस जाओ, नाश करो दुर्गुण-दानव-दल।
अन्तस्-शयन करो, देखूँ मैं चरण-युगल तेरा ही हर पल।।
रसिक सन्त सन्तरण करें, मन ऐसा पारावार बना लो।
हे हरि! हमको दास बना लो।

रामकृष्ण प्रभु युग अवतार

(तर्ज - वाणी रूपे रहियाछो ...)

रामकुमार गौड़, वाराणसी

करने आये हो जग-जीव उद्धार।
रामकृष्ण प्रभु युग-अवतार।। टेक।।
हे करुणाकर, बाल गदाधर।
भक्त-अभयकर, अन्तर-सहचर।।
नमस्कार करूँ कोटि, हजार।।
रामकृष्ण प्रभु।।१।।
हे उदार प्रभु अन्तरयामी।
आकर हृदय विराजो स्वामी।।
सकल चराचरपति साकार।।
रामकृष्ण प्रभु।।२।।
हे अखिलेश्वर, दीनदयाला।
दरशन दे, करो धन्य, निहाला।।
आज विकल मैं करूँ पुकार।।
रामकृष्ण प्रभु।।३।।
हे प्रभुवर, अवतारवरिष्ठा।
मुझमें तनिक न भक्ति, न निष्ठा।।
शरणागत में बारम्बार।।
रामकृष्ण प्रभु।।४।।
आज एक ही विनती स्वामी।
मुझे बनाओ पद-अनुगामी।।
दे दो श्रीपदभक्ति उदार।।
रामकृष्ण प्रभु।।५।।

ज्ञान और भक्ति में अन्तर

डॉ. विजय प्रकाश त्रिपाठी

सम्पादक, जयतु हिन्दू विश्व, कानपुर

गोस्वामी तुलसीदास जी ने ज्ञान और भक्ति दोनों को सांसारिक दुखों से मुक्ति देनेवाला स्वीकार किया है, किन्तु उनकी दृष्टि में इन दोनों के मध्य कुछ अन्तर है और उसके कारण सन्त लोग ज्ञान का उतना आदर नहीं करते, जितना भक्ति का करते हैं। 'रामचरित मानस' में कागभुसुण्डी-लोमश सम्वाद में लोमश ऋषि ज्ञान का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु भुसुण्डीजी उसका आदर न कर भगवान् की लीला-कथाएँ सुनना चाहते हैं, भक्ति का रहस्य समझना चाहते हैं। गरुड़जी उनसे ऐसा करने का कारण पूछते हैं।

भुसुण्डिजी के मत से ज्ञान और भक्ति में तीन अन्तर हैं। उन तीनों के कारण भक्ति अधिक आदरणीय है। वे प्रथम अन्तर नारी और पुरुष का करते हैं। ज्ञान, वैराग्य, योग आदि पुरुष वर्ग में आते हैं। जीव भी पुरुष है, वह यदि विरक्त हुआ, तो मायारूपी नारी का परित्याग कर सकता है, अन्यथा ज्ञान पुरुष होने के कारण माया नारी के मोहजाल में फँस जाता है।

भक्ति और माया दोनों नारी वर्ग के अन्तर्गत आती है। यदि हम भक्ति का सहारा लें, तो वह माया के प्रभाव में न आकर हमारी रक्षा करेगी। एक नारी दूसरी नारी के रूप में उस प्रकार मोहित नहीं होती, जैसे पुरुष हो जाता है। इस नियम को देखते हुए यदि हम अपने हृदय में भक्ति को स्थान दें, तो फिर माया में हमारी आसक्ति नहीं हो सकती। यह तर्क भले ही कुछ सतही लगे, किन्तु अभ्यास में यह उपयोगी होता है।

काकभुसुण्डीजी और गरुड़जी

भुसुण्डिजी ज्ञान और भक्ति का दूसरा अन्तर कुछ अधिक गम्भीर बताते हैं। वे कहते हैं कि भक्ति और माया दोनों ईश्वर की परम शक्तियाँ हैं, किन्तु उन्हें माया की अपेक्षा भक्ति अधिक प्रिय है। भक्ति के प्रति परमात्मा की अनुकूलता देखकर माया उससे भयग्रस्त रहती है। जीव के हृदय में भक्ति का वास देखकर माया उसके निकट जाने का साहस नहीं करती। इसलिए भक्त सदा माया से निड़र रहता है। गोस्वामीजी का मत है कि परमात्मा का यह रहस्य शीघ्र किसी के भी समझ में नहीं आता है –

यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपा सपनेहुँ मोह न होई।।

ईश्वर, माया और भक्ति का यह तात्त्विक सम्बन्ध श्रीविष्णुपुराण में अति सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है। वहाँ भक्ति की उत्पत्ति परमात्मा से मानी गई है। भगवान नारदजी कहते हैं सतयुग, त्रेता और द्वापर युगों में ज्ञान और वैराग्य भक्ति के साधन थे, किन्तु कलियुग में तो मात्र भक्ति ही मोक्ष देनेवाली है। यही विचारकर भगवान ने सत्य स्वरूप से भक्ति की उत्पत्ति की।

इससे पूर्णतया स्पष्ट है कि सन्तों ने परमात्मा की दो मुख्य शक्तियाँ स्वीकार की हैं। माया परमात्मा की ही शक्ति है, किन्तु परमात्मा से विपरीत लक्षण वाली है। परमात्मा सत्, चित् और आनन्दस्वरूप हैं, किन्तु माया असत् जड़ और दुखस्वरूपा है। यह सर्व प्रसिद्ध है। भक्ति भी परमात्मा की शक्ति है, किन्तु वह अपने उपादान के अनुकूल स्वयं भी सत् चित् और आनन्दस्वरूप है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं – **भगतिहि सानुकूल रघुराया।** ईश्वर और भक्ति समानधर्मी हैं। दोनों सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। यही बात राधा और कृष्ण के सम्बन्ध में है। दोनों ही परात्पर ब्रह्म के रूप हैं। एक भक्ति रूपा है और दूसरे भगवान् रूप। राधा और कृष्ण में जैसा प्रेम है, वैसा ही भक्ति और भगवान में प्रेम है। राधा-रूपी भक्ति हृदय में आ गई, तो उसके प्रेम में भगवान भी आ जाएँगे। यह रहस्य जाननेवाला मनुष्य सदैव भक्ति का आदर करेगा और वह कभी मोह में न पड़ेगा। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (२१)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

पञ्चमोऽध्याय
जीवावस्थाभेदः
श्रीरामकृष्ण उवाच

मक्षिका द्विविधाः सन्ति मक्षिका मधुमक्षिका ।।
भुङ्क्ते सा मधुनो नान्यत् किञ्चन मधुमक्षिका ।।२८।।
मधुनि मक्षिका चान्ते प्राप्तं चेत्तु क्षतं तया ।
तन्मधु सपदि त्यक्त्वा याति पर्युसितं व्रणम् ।।२९।।

– दो प्रकार की मक्खियाँ होती हैं। साधारण मक्खी तथा मधुमक्खी। उनमें से मधुमक्खी मधु छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं खाती, परन्तु दूसरी प्रकार की मक्खी मधु में भी बैठती है, सड़ा घाव मिलने पर वह मधु छोड़कर तत्क्षणात् उसपर पर जा बैठती है ।।२८-२९।।

प्रकृत्या द्विविधाः सन्ति पुरुषाश्च तथैव हि।
ते नैवान्यां कथां कांश्चिद् ये त्वीश्वरानुरागिनिः।।
कर्हिचित् कर्तुमर्हन्ति वाचं भगवतो विना ।।३०।।

– उसी प्रकार संसार में दो प्रकार के पुरुष भी है – जो ईश्वर अनुरागी है, वह कभी भी भगवान की कथा छोड़कर कोई अन्य प्रसंग कर ही नहीं सकता ।।३०।।

जीवाः संसार आसक्ता अपि शृन्वन्तु ऐश्वरम् ।
तत्त्यक्त्वा तत्र मत्तास्ते चेदुक्तं कामकाञ्चनम् ।।३१।।

– और जो संसार में आसक्त जीव हैं, वे ईश्वरीय कथा सुनते-सुनते यदि किसी के द्वारा काम-काञ्चन की बातें बोली जाये, तो वे ईश्वरीय प्रसंग त्याग कर उसी में मत्त हो जाता हैं ।।३१।।

बद्धा जीवा हरेर्नाम श्रुण्वन्ति स्वयमेव न ।
न जातु तेऽनुमोदन्ते श्रवणायापि चापरान् ।।३२।।

– बद्ध जीव हरि नाम स्वयं भी नहीं सुनते हैं और दूसरों को भी कभी सुनने नहीं देते (अनुमोदन भी नहीं करते) ।।३२।।

भूयोभूयोऽपि निन्दन्ति धर्मञ्च धार्मिकाञ्च ते ।।
उपहसन्ति नानैव तान् ध्यानधारणारतान् ।।३३।।

– वे लोग धर्म और धार्मिकों की अतिशय निन्दा करते हैं तथा ध्यान-धारणा में रत रहनेवालों का विभिन्न प्रकार से उपहास करते हैं ।।३३।।

यथाहि शस्त्रसम्पाते ग्राहगात्रे पुनः पुनः।।
किमपि भिद्यते नैव तत् प्रत्यावर्तते वरम् ।।३४।।

– जिस प्रकार मगरमच्छ के अंग में बार-बार अस्त्र द्वारा वार करने पर भी भेद नहीं होता, अपितु वह (अस्त्र लगकर) वापस आ जाता है ।।३४।।

तथैव बद्धजीवेभ्यस्तेभ्यो धर्मकथा भृशम् ।।
कथञ्च कथिता तेषां प्राणान्न स्प्रष्टुमर्हति ।।३५।।

– उसी प्रकार बद्ध जीवों को धर्मकथा जितनी भी कही जाये या सुनायी जाये, किसी भी तरह उनके प्राणों को स्पर्श नहीं करती ।।३५।। **(क्रमशः)**

दिन बीते जा रहे हैं, क्या कर रहे हो? ये दिन वापस नहीं आयेंगे। ठाकुर के पास प्रार्थना करो। वे अभी भी विद्यमान हैं। आन्तरिक हृदय से पुकारने से वे रास्ता दिखाते हुए ले जाते हैं। उन्हें छोड़ना नहीं, नहीं तो मरोगे। 'तुम मेरे', 'मैं तुम्हारा' यही भाव चाहिए। इस रास्ते आकर यदि जप-ध्यान नहीं करोगे, उनमें मन को लीन करने की कोशिश नहीं करोगे, तो बहुत कष्ट पाओगे। मन खाली कामिनी-कांचन के लिए लालायित होकर घूमता रहेगा। सत्त्व का तम चाहिए, जैसे अभी तक मुझे भगवान-लाभ हुआ नहीं, तो इस अभागे जीवन को और क्यों रखना? ऐसा भाव होना चाहिए।

– स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

आध्यात्मिक जिज्ञासा (८७)

स्वामी भूतेशानन्द

(५४)

प्रश्न – महाराज ! आप तो १९२६ एवं १९८० दोनों सम्मेलनों में उपस्थित थे। इन दोनों में आपने कौन-सा परिवर्तन देखा? १९२६ के इतने वर्ष बाद दूसरा १९८० में हुआ था। पहले वाले में ठाकुर की सन्तानें थीं, बाद वाले में नहीं थीं।

महाराज – उनलोगों का प्रभाव भक्तों पर स्वभावत: अधिक था। जन-साधारण पर उन लोगों का प्रभाव कितना था, वह ठीक से नहीं कह सकता।

– माने कोई चरित्रगत भिन्नता थी क्या?

महाराज – उनलोगों का जीवन आदर्शमय था। उस जीवन-धारा से जो प्रभावित हुआ है, उसमें से अधिकांश साधु बने हैं। गृहस्थ बीच में हैं। किन्तु समाज के बहुत दरिद्र, अविकसित जो लोग हैं, उनके ऊपर कितना प्रभाव पड़ा है, कह नहीं सकता।

– आपको केन्द्रित कर एक प्रश्न मन में आ रहा है। इतने दिनों से संघ में रहने का आप बिरले उदाहरण हैं। विशेषकर इतने लम्बे समय से आप संघ में हैं, ऐसा दूसरा कोई नहीं है। इसके अतिरिक्त आप अल्प आयु से ही मठ के आस-पास रहे हैं। यह भी एक बिरला उदाहरण है। तदनन्तर आपने विभिन्न समय में विभिन्न भाव से संघ की सेवा की है। विभिन्न भाव से अर्थात् विभिन्न पदों पर रहते हुये। 'पद' शब्द यद्यपि कहना ठीक नहीं है, फिर भी कह रहा हूँ। कभी सामान्य सेवक के रूप में, कभी केन्द्र के प्रभारी होकर प्रशासक के रूप में, उसके बाद संघगुरु के रूप में, इन विभिन्न परिवर्तनों के बीच से होते हुए आप इस वर्तमान अवस्था में हैं, यह जो सारे जीवन का आपका अनुभव है, इसके परिप्रेक्ष्य में, इसके अनुसार भविष्य के रामकृष्ण मिशन के प्रति आपकी क्या धारणा है?

महाराज – धारणा नहीं बदली है।

– कर्मक्षेत्र में आपकी पहले क्या धारणा थी?

महाराज – नहीं, नहीं। पहले मैं अपनी बात समाप्त करूँ। बचपन से मेरी जो धारणा थी, ठाकुर की सन्तानों के सान्निध्य में आकर जो धारणा बनी, वह धारणा कर्म-क्षेत्र में परिणत हुई है, यह कह सकता हूँ।

– वर्तमान में संघ में जो परिवर्तन आप देख रहे हैं और संघ के भविष्य के सम्बन्ध में आप क्या कहेंगे? इस सम्बन्ध में आपकी विस्तृत धारणा प्रथम से अन्त तक कहिये न।

महाराज – कठिन प्रश्न है ! कठिन प्रश्न इसलिए है कि हमलोग बचपन से आध्यात्मिक पिपासा मिटाने के लिए यहाँ साधुओं के सान्निध्य में आये हैं। संघ-गुरु और संन्यासियों के संग से जीवन प्रभावित हुआ है। धीरे-धीरे कर्म के प्रति जो उदासीनता थी, वह कम हुई है। मेरे जीवन में और सामाजिक जीवन में भी कितनी कर्म के प्रति उदासीनता थी ! अभी जो लोग आ रहे हैं, उनमें भी आध्यात्मिक पिपासा नहीं है, ऐसा नहीं है। पिपासा है।

– वास्तव में इसी को लेकर तो सभी लोग आते हैं।

महाराज – किन्तु धीरे-धीरे कार्य में इतने लिप्त हो जाते हैं कि इधर इतनी प्रबल दृष्टि नहीं रहती। मन केन्द्रित नहीं होता, बिखर जाता है। यही भविष्य के सम्बन्ध में कहूँगा कि हमलोग भविष्य का निर्माण करेंगे। भविष्य का निर्माण स्वयं होगा, ऐसा नहीं है। हमलोग चेष्टापूर्वक अपने को सजग रखते हुए, अपने गुरुदेव के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए सावधानीपूर्वक जैसे चलेंगे, उसी से संघ का भविष्य निर्मित होगा। चेष्टा नहीं हो रही है, ऐसी बात नहीं है। चेष्टा हो रही है। किन्तु अभी अत्यधिक व्यापक, विस्तार होने के कारण जो लोग आ रहे हैं, उनमें से हमलोग छाँट-छाँटकर, परखकर नहीं ले पा रहे हैं। जिन लोगों को लिये हैं, उन्हें भी कार्य में इतना संलग्न कर दिये हैं कि उनके आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में हमलोगों की बहुत सजग दृष्टि नहीं

है। यही एक समस्या है। इसके कारण संघ के पतन की आशंका की जा रही है और इसके लिए प्रयास भी किया जा रहा है, जिससे ऐसी दुर्घटना न हो। हम लोग जिससे पुन: जाग्रत हो जायँ, इस ओर ध्यान देना चाहिए, ऐसा लगता है।

– इसके साथ एक और बात है महाराज, राष्ट्रीय जीवन के परिवर्तन के साथ-साथ ये सब आध्यात्मिक संघ को भी उन लोगों के साथ कदम मिलाकर चलना पड़ रहा है।

महाराज – राष्ट्रीय जीवन के साथ कदम मिलाकर चलना अर्थात् अपने नियमानुसार राष्ट्रीय आदर्श के साथ कदम मिलाकर चलना पड़ रहा है, यह तो ठीक है, किन्तु उसके द्वारा हमलोगों ने अपने आदर्श को छोटा नहीं किया है।

– उसका प्रभाव तो पड़ेगा?

महाराज – हाँ, प्रभाव पड़ता है। सरकारी अनुदान लेने से उसके द्वारा निर्दिष्ट कार्य को ही करना पड़ता है, जैसा वे लोग चाहते हैं, वैसा करना पड़ता है, यह हमलोगों के लिए बहुत अच्छा नहीं है।

– आश्रम-संचालन में भी कुछ-कुछ हस्तक्षेप हो रहा है।

महाराज – हाँ, थोड़ा-थोड़ा हो रहा है।

– इससे जो प्रभाव पड़ रहा है, उससे भी तो परिवर्तन हो रहा है। कुछ के साथ समझौता करना पड़ रहा है। हमलोगों का यह समझौता मूल धारणा या क्रिया-कलाप को कितना प्रभावित कर रहा है?

महाराज – यदि मूल आदर्श की ओर हमारी सजगता रहे, तब ये बाधायें सामयिक रूप से कुछ समय के लिए हमलोगों को दबा कर रख सकती हैं, किन्तु आदर्श को सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित नहीं कर सकतीं।

– हमलोगों की जो कार्य-प्रणाली है, वह तो समाज और मानव को लेकर ही होगी।

महाराज – हाँ, वह तो है ही।

– समाज के परिवर्तन के साथ-साथ हमलोगों को भी कार्य प्रणाली में परिवर्तन करना ही होगा।

महाराज – प्रणाली का परिवर्तन किस दिशा में हो रहा है? प्रणाली में परिवर्तन नहीं हुआ है। हमलोग जो सेवा करना चाहते हैं, वह उस समय करना चाहते थे और अभी भी करना चाहते हैं। किन्तु अन्तर यह है कि तब क्षेत्र बहुत सीमित था और कुछ साधुओं ने अपने जीवन को इस कार्य में पूर्णत: समर्पित कर कार्य किया है। अभी तो सम्भव नहीं है। अभी हमलोगों का इतना विस्तार हो गया है कि हमारे संचालकवृन्द का प्रश्न है – इससे अच्छा कहाँ पायेंगे? ऐसी दृष्टि निर्मित हो रही है। जो तात्कालिक अयोग्य लगता है, उसे ही हमलोग कार्यभार देकर भेजने को विवश हो रहे हैं।

– क्या उससे हमलोगों का गुणगत सम्मान कम नहीं हो जाता है?

महाराज – हाँ, सम्मान कम हो जाता है। किन्तु समष्टि रूप से इतना सम्भवत: कम नहीं होता है, किन्तु क्षेत्र की दृष्टि से कम हो जाता है। हमलोगों का विस्तार इतना व्यापक हो गया है कि सर्वत्र ध्यान रखना भी सम्भव नहीं हो पा रहा है। परन्तु सर्वदा सावधान रहने की आवश्यकता है, जिससे संघ की हानि न हो।

– भविष्य में इसकी व्यापकता तो और अधिक बढ़ेगी। इसी एक सौ वर्ष में हमलोग जितना देख रहे हैं, आगामी एक सौ वर्ष में इससे बहुत अधिक विस्तार होगा। इसलिए आगामी एक सौ वर्ष में हमलोगों की जो कर्म करने की प्रणाली है, क्या उसमें कुछ परिवर्तन करना होगा?

महाराज – पद्धति में परिवर्तन होगा कि नहीं, अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु यदि हमलोग आदर्श को पकड़कर रख सकें, तो हमलोग आदर्श-भ्रष्ट नहीं होंगे। उसका प्रयोग उस समय कैसे होगा, कार्य-प्रणाली कैसी होगी, वह भविष्य पर निर्भर करेगा, जैसी-जैसी परिस्थिति होगी।

– जैसे बौद्ध संघ।

महाराज – बौद्ध संघ क्रमश: अवनत हुआ है। सर्वत्र हुआ है। वैष्णव सम्प्रदाय भी हुआ है। **(क्रमश:)**

तुम्हारी कमर कसी रहे और तुम्हारे दिये जलते रहें और तुम भी प्रभु की प्रतीक्षा उन लोगों के समान करो, जो अपने स्वामी की बाट देख रहे हों कि वह ब्याह से कब लौटेगा, ताकि जब वह आकर द्वार खटखटाए, तो तुरन्त उसके लिए खोल दे।

माँगो, तो तुम्हें दिया जाएगा, ढूँढ़ो तो तुम पाओगे, खटखटाओ, तो तुम्हारे लिए खोला जाएगा। क्योंकि जो कोई माँगता है, उसे मिलता है और जो ढूँढ़ता है, वह पाता है और जो खटखटाता है, उसके लिए खोला जाता है।

– ईसा मसीह

ऐसा विश्वास करो कि मेरी पुकार ईश्वर सुनते ही हैं

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

सुख-दुख हमारे कर्मों का ही फल है। इसलिए अपने सुख-दुख के लिए दूसरों को दोष नहीं देना चाहिये। रुपया इतना आकर्षित करता है कि मनुष्य प्राण छोड़ देता है, लेकिन रुपया नहीं छोड़ता। धन में दोष नहीं है, धन के लोभ में दोष है। वही लोभ बन्धन का कारण है। लोभ के कारण उनका मन दुर्बल हो जाता है। इसलिए ठाकुरजी कहते हैं – नाम में रुचि और ईश्वर के प्रति समर्पण बुद्धि रखनी चाहिए। इससे बहुत से दुख कम हो जाते हैं। पूर्व जन्म के संस्कार और इस जन्म के संस्कार मिलाकर हमारा स्वभाव बनता है। ऐसा विश्वास रखना चाहिए कि मेरी पुकार भगवान सुनते ही हैं। ऐसा विश्वास करते-करते मन शान्त होता है और भगवान में लगता है। इंद्रियों की दासता से मुक्त हुए बिना हमें मुक्ति नहीं मिलेगी, भगवान का दर्शन नहीं होगा। पिछले जन्म में सभी इंद्रियों के भोग भोगे हैं। इस जन्म में भी इंद्रियों के भोग भोगे हैं। इस जन्म में भी इंद्रियों के भोग में रमकर दास बन गये हैं। इसलिये जप करने से इन्द्रियों के स्वामी हो जाते हैं। हम भक्ति मार्ग से जायेंगे, तो इंद्रियों के सुख को अनित्य समझेंगे। ईश्वर से प्रार्थना करेंगे। नाम-जप करेंगे, तो हमारी इन्द्रियाँ शिथिल हो जायेंगी।

मनुष्य में यह स्वाधीनता है कि वह चाहे तो भगवान भी बन सकता है और चाहे तो राक्षस भी बन सकता है। हमें कैसे रहना है, यह हमारे मन पर अवलम्बित है। हम मरते समय एक तिनका भी अपने साथ नहीं ले जा सकेंगे। इसलिये यह संसार उपयोग करने के लिए है, उसमें फँसने के लिए नहीं। इसीलिए कहते हैं, थोड़ा-सा विचार करो, तो दिखता है कि संसार में केवल दुख ही है। इसलिए हमेशा मृत्यु का स्मरण रखो। जब एक दिन हमें सब कुछ छोड़कर जाना ही है, तब हम जीवित रहते ही सब क्यों न छोड़ दें ! संसार में जीवन-यापन हेतु जितनी आवश्यकता है, उतना ही ग्रहण करो। कभी लोभ मत करो। लोभ नरक का द्वार होता है।

यदि तुम आध्यात्मिक जीवन जीना चाहते हो, तो तुम्हें दैनिक जीवन में कुछ नियमों का पालन करना है। रात का भोजन कम करना है। क्योंकि अधिक भोजन करने से नींद नहीं खुलेगी। नींद नहीं खुलेगी, तो भगवान का नाम-जप नहीं होगा। इसलिये भगवान का नाम-जप करने के लिये सन्तुलित आहार की आवश्यकता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि अपने को कदापि कमजोर मत समझो। अपने आप पर विश्वास रखो। अपनी आत्मा पर विश्वास रखने से तुम विश्वविजयी हो जाओगे। हमारे उन्नति और पतन का कारण हमारे हाथ में ही है। अगर हम मन को वश में करेंगे, तो सारा संसार हमारे वशीभूत हो जायेगा। हम विश्वविजयी बनेंगे। आध्यात्मिकता का प्रारम्भ यहीं से है। जिसका स्वयं पर विश्वास नहीं, उसका ईश्वर पर भी विश्वास नहीं रहता। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, जिसका स्वयं पर विश्वास है, वही आस्तिक हो सकता। संसार तो असार है, केवल ईश्वर ही सत्य हैं। जब इन्द्रिय-सुखों से वैराग्य होगा, तब भगवान में अगाध विश्वास होगा और भगवान के दिव्य प्रेम का हमें आस्वाद मिलेगा। भगवान पर विश्वास होने से हमें अपने पर भी विश्वास होगा। आध्यात्मिकता की उपलब्धि तो ईश्वर की कृपा से ही होती है। लेकिन प्रयत्न तो हमें करना है। सत्संग करना स्नान करने के समान है। जैसे स्नान करने से शरीर का मैल निकल जाता है, वैसे सत्संग से मन का मैल निकल जाता है। मन स्वच्छ हो जाता है। ○○○

रामराज्य का स्वरूप (८/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

श्रीभरत ने गुरुदेव और अयोध्यावासियों के समक्ष यह प्रश्न रखा –

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
तहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार।।

२/१८०/०

किसी व्यक्ति के ऊपर ग्रह दशा आ गई हो, उस पर उसको वात का रोग हो जाये और ऊपर से उसको बिच्छू डंक मार दे। वह वैद्य के पास जाये और वैद्य कह दे कि इसको शराब पिला दो, तो यह कोई दवा हुई क्या?

वह दर्द को भले ही कुछ क्षणों के लिये भूल जाये, पर उससे क्या उसकी ग्रह दशा उतर जायेगी? बिच्छू का विष क्या उतर जायेगा? क्या उसका वातरोग शान्त हो जायेगा? यहाँ पर श्रीभरत का तात्पर्य तीन बातों की ओर था। बोले, अयोध्या में जो कुछ अनर्थ हुआ, उसमें ग्रह दशा है, बिच्छू का डंक है और वात रोग है। श्रीभरत का तात्पर्य था कि जब महारानी कैकेयी की बुद्धि भ्रष्ट हुई मन्थरा के द्वारा, तो यह मानो ग्रह दशा आ गई। गोस्वामीजी ने कहा –

अवध साढ़साती तब बोली। २/१६/४

मन्थरा की बुद्धि को बदलने के लिए सरस्वतीजी आईं। जब बुद्धि में परिवर्तन हो, तो यह ग्रहदशा परिवर्तन है। सबसे बड़ी ग्रहदशा क्या है? बुद्धि का भ्रष्ट हो जाना। इसका अभिप्राय यह है कि ग्रह दशा प्रभाव जब डालती है, तो बुद्धिवृत्ति नष्ट हो जाती है और तब कहते हैं – 'पुनि बात बस'। वात की तुलना की गई है काम से –

काम बात कफ लोभ अपारा। ७/१२०/३०

एक ओर तो महारानी कैकेयी की बुद्धि भ्रष्ट हो ही गई थी और दूसरी और पिताजी की। इसीलिए श्रीभरतजी ने बड़ी सूक्ष्म भाषा में कहा कि पिताजी के प्रति आक्षेप प्रगट न हो, हमारे पिताजी की आसक्ति ने, वात ने उन्हें पीड़ित बना दिया। इसका अभिप्राय है कि काम की वृत्ति भी जुड़ गई। काम वृत्ति के साथ जब प्रभु को वन भेज दिया गया, तब गोस्वामीजी ने लिखा –

नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी।
छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी।। २/४५/६

श्रीराम का वियोग मानो बिच्छू के डंक मार देने के समान है। पिताजी का आसक्त हो जाना, वात रोग है और कैकेयी की बुद्धि का भ्रष्ट हो जाना मानो ग्रह दशा है। ऐसी स्थिति में इसका समाधान ढूँढा जाना चाहिए। समाधान ठीक-ठीक तभी ढूँढ़ा जा सकता है, जब काम की समस्या, वियोग की समस्या और बुद्धि भ्रष्टता की जो समस्या है, उस समस्या का समाधान मिल सके। गोस्वामीजी ने कहा, श्रीभरतजी ने केवल कहा ही नहीं, बुद्धि का उद्धार भी किया। गोस्वामीजी ने तो जितनी बातें लिखी है, उनमें से जितना आप ले सकें लीजिए, गोस्वामीजी एक सूत्र बड़े महत्त्व का देते हैं। क्या? जितने अनर्थ हैं, उसके मूल में है बुद्धि की भ्रष्टता। राम-राज्य की स्थापना में अगर बाधा भी पड़ी है, तो बुद्धि भ्रष्ट होने पर बाधा पड़ी है। अत: बुद्धि के उद्धार होने की आवश्यकता है। बुद्धि का उद्धार किसने किया? श्रीभरत ने केवल कहा नहीं, जो अयोध्या में बुद्धि नष्ट हो गई थी, भ्रष्ट हो गई थी, उसका उद्धार भी श्रीभरत के द्वारा हुआ था। वह उद्धार गोस्वामीजी ने बड़े उत्कृष्ट रूपक में प्रस्तुत

किया। उन्होंने कहा –

सोक कनकलोचन मति छोनी।
हरी बिमल गुन गुन जगजोनी।।
भरत बिवेक बराहँ बिसाला।
अनायास उधरी तेहि काला।। २/२९६/३-४

उन्होंने पुराण की एक कथा उठाई। पुराणों में कथा आती है, हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दो भाई थे, उसमें हिरण्याक्ष जो था, उसने सारी पृथ्वी को चुरा लिया। सारी पृथ्वी को जब चुरा लिया, तो लोगों ने व्याकुल होकर भगवान से प्रार्थना की। तब भगवान ने वाराह अवतार लिया और वाराह अवतार लेकर उस राक्षस हिरण्याक्ष का वध कर उस पृथ्वी का उद्धार किया। गोस्वामीजी कहते हैं कि अयोध्या में भी कनक लोचन पैदा हो गया और उसने पृथ्वी का हरण कर लिया। उसके उद्धार की आवश्यकता थी। क्या अभिप्राय है? कनक लोचन कौन है? कनक लोचन का अर्थ आप जानते हैं। कनक लोचन का अर्थ है कि जिसकी आँखें सोने की बनी हुई हैं। इसका अर्थ यह है, ये दोनों भाइयों के साथ सोना जुड़ा हुआ है, स्वर्ण। एक भाई के साथ कनक लोचन है और दूसरे के साथ कनककसिपु। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु। हिरण्याक्ष माने सोने की आँख और हिरण्यकशिपु का अर्थ है (स्वर्ण) सोने के पलंग पर सोनेवाला। बहुत बड़ा व्यंग्य है। क्या? दो भाई हैं और रात है और दिन है। रात है, तो सोने के पलंग पर सोए और दिन है, जगे तो सोने की आँख, सोना ही सोना रात-दिन। यह मानो लोभ की पराकाष्ठा है। स्वर्ण लोभ का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। इसका अभिप्राय है कि जब किसी व्यक्ति की आँखों में लोभ समा जाता है, तब वह सारी पृथ्वी को चुराकर स्वयं उस पर अधिकार कर लेने के लिये व्यग्र हो जाता है, वह सभी वस्तुओं को हड़प लेना चाहता है। यही वृत्ति मानो मन्थरा के द्वारा कैकेयी के मन में उत्पन्न कर दी गई। कैकेयीजी पहले अपनी आँखों से देखती थीं, पर बाद में मन्थरा से इतनी प्रभावित हुईं कि उन्होंने कहा कि मन्थरा आज तक मैंने तुम्हें उचित स्थान नहीं दिया। मैंने सदा पैरों के पास बैठाया, पर तुम पैरों के पास बैठने योग्य नहीं हो। तो कहाँ बैठने योग्य हो? बोलीं, बस इतना ही मैं तुम्हें वचन देती हूँ –

करौं तोहि चख पूतरि आली। २/२२/३

मैं तो तुम्हें अपने आँख की पुतली बना लूँगी। जब मन्थरा आँखों में बैठ जाय, तो बस कनक लोचन आ गया और कनक लोचन ने बुद्धि का हरण कर लिया। गोस्वामीजी ने बड़ी मीठी बात कही। बोले, वहाँ तो भगवान ने अवतार लेकर वाराह के रूप में, हिरण्याक्ष का वध किया था, पर यहाँ ! स्वयं साक्षात् भगवान थे और उनके रहते हुए भी हिरण्याक्ष सफल हो गया बुद्धि को हरण करने में। श्रीराम वहाँ थे, पर कैकेयी की बुद्धि भ्रष्ट हो गई, मन्थरा की बुद्धि परिवर्तित हो गई। इसका अभिप्राय है कि भगवान राम साक्षात् ईश्वर होते हुए भी उस समय अयोध्यावासियों की या कैकेयी की बुद्धि जिस प्रकार से चोरी चली गई और उसका उद्धार नहीं कर पाये। पर धन्य हैं भरत, जो उद्धार भगवान राम नहीं कर पाये, गोस्वामीजी कहते हैं,

भरत बिवेक बराहँ बिसाला। २/२९६/४

वह वाराह, जो इस पृथ्वी का उद्धार किया वह कौन है? बोले – **भरत बिवेक बराहँ बिसाला।**

एक शब्द और जोड़ दिया। भगवान वाराह से हिरण्याक्ष का बड़ा लम्बा युद्ध हुआ था। पर यहाँ भरत के विषय में उन्होंने कहा, **अनायास उधरी तेहि काला।।**

'अनायास' शब्द जोड़कर, बोले, भरत को तो रंचमात्र विलम्ब नहीं लगा। क्षण भर में, बस एक वाक्य उन्होंने कहा। महाराज दशरथ कैकेयीजी को समझाते-समझाते थक गये। जितनी कैकेयीजी की सखियाँ थीं, उन्होंने कैकेयीजी को लाख समझाया। पर सबके समझाने के बाद भी उनकी बुद्धि में परिवर्तन नहीं आया। पर धन्य हैं भरत जिन्होंने एक प्रहार के द्वारा, एक व्यवहार के द्वारा कैकेयी की बुद्धि को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया। गुरु वशिष्ठ सचमुच जो समाधान दे रहे थे या जो निदान कर रहे थे, वह अधूरा था, तब श्रीभरत ने समाधान दिया। पद की समस्या का समाधान क्या है? बस पद की समस्या का समाधान यह है कि व्यक्ति में यदि पद पाने की ही व्यग्रता हो, तो संसार में जितने पद हैं, उनको पाने पर मद होता है, पर एक राम का पद ही ऐसा है, जिसको पाने पर मद उतर जाता है। ऐसी स्थिति में हम लोग चले वहाँ पर, जहाँ पर पहुँच जाने पर मद उतर जाने की आशा है और जहाँ पद की लालसा नहीं है, अयोध्यावासियों से श्रीभरत ने यह भी पूछा कि आप लोग मुझे राज्य देकर अपने ऊपर कृपा कर रहे हैं कि मुझ पर कृपा कर रहे हैं? आप लोगों को शायद यह

भ्रम हो गया होगा कि भरत प्रसन्न हो जाएँगे कि इतना बड़ा राज्य अयोध्यावासी मुझे दे रहे हैं, पर आप लोगों को इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए। मैं इस छोटे से पद का भूखा नहीं हूँ। उन्होंने समाधान दिया कि सबका समाधान एक ही है। 'ग्रहग्रहीत' बुद्धि को अगर शुद्ध करना है, तो श्रीभरत ने कहा कि जब तक बुद्धि को भक्ति के जल में धोई नहीं जायेगी, तब तक शुद्ध नहीं होगी –

रघुपति-भगति-बारि-छालित-चित्त बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै।।
विनय पत्रिका १२४/५

इसलिए आवश्यकता बुद्धि को भगवान की भक्ति के जल में धोने की है। तभी बुद्धि ठीक ठीक शुद्ध होगी। उस बात का समाधान भी यही है। काम का समाधान क्या है? काम का समाधान राम में ही तो है –

जहाँ राम तहँ काम नहिं, नहीं राम तहँ काम।
तुलसी कबहु न रह सकइ रवि रजनी इक ठाम।।

श्रीभरत का तात्पर्य यह था कि राम को हम सच्चे अर्थों में पा लेते हैं, तो काम जीवन से दूर चला जाता है। इस समय राम ही जीवन से दूर चले गये हैं, इसलिए अगर काम व्याप्त हो रहा है और काम का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है, तो उसका निराकरण भी यही है कि हम लोग चित्रकूट चलें। वियोग के बिच्छू ने जो डंक मार दिया है, उस वियोग को संयोग के रूप में परिणत करने के बाद ही इस समस्या का समाधान ढूँढ़ा जा सकता है। इसलिए श्रीभरत ने घोषणा करते हुए कहा –

आपनि दारुन दीनता कहऊँ सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।।
२/१८२/०

परिणाम क्या हुआ? अयोध्यावासियों की बुद्धि पर गुरुदेव का प्रभाव था, पर श्रीभरत की विशेषता यह है कि वे बुद्धि को भी जीत लेते हैं और हृदय को भी जीत लेते हैं। उन्होंने जब भाषण दिया, तो चारों ओर भरतजी की जय ध्वनि होने लगी। सब गद्‌गद हो गये। जिन लोगों के मन में भरतजी के प्रति संदेह था, वे बेचारे तो ग्लानि में गड़ गये। वे तो सोचने लगे कि इतने बड़े महान भक्त को, संत को हमलोगों ने षड्यन्त्रकारी मान लिया, हम कितने बड़े अपराधी हैं। वे भरत का स्मरण करने लगे। गोस्वामीजी ने लिखा –

चलत प्रात लखि निरनउ नीके।
भरतु प्रानप्रिय भे सबही के।। २/१८४/२

यह गोस्वामीजी के शब्दों के प्रयोग की सावधानी है। इसका अभिप्राय है कि पहले भरत कुछ ही लोगों के प्राणप्रिय थे, सबके प्राणप्रिय नहीं थे। पर जब चित्रकूट चलने की उन्होंने घोषणा की, तो अयोध्या का ऐसा कोई नागरिक नहीं था, जिसके लिये भरत प्राणप्रिय न हो गये हों। उसके पश्चात् प्रभाव कैसा पड़ा? अद्‌भुत प्रभाव पड़ा ! अद्‌भुत प्रभाव इस रूप में पड़ा कि प्रात: प्रभु के पास चलने का निर्णय हो गया –

प्रातकाल चलिहऊँ प्रभु पाहीं। २/१८२/२

भाषण समाप्त हो गया। अयोध्या के नागरिक भाषण सुनकर लौटे। रात्रि आई और रात्रि के समय अयोध्या में जो अत्यन्त कोमल शैय्या थी, उन शैय्याओं पर अयोध्या के नागरिक सो गये। पर नींद नहीं आ रही है। लेकिन विचित्र बात है, वन में गये थे और जमीन पर पड़े और सो गये और आज भरत के भाषण का यह प्रभाव पड़ा कि –

जागत सब निसि भयउ बिहाना। २/१८६/२

सुबह होने की प्रतीक्षा में सब जागते रहे रात भर, नींद ही नहीं आई। बस कब हो सबेरा। भगवान राम बताना चाहते थे कि यह परिवर्तन मैं नहीं कर पाता। परिवर्तन तो संत और भक्त की भूमिका है। इसलिए गोस्वामीजी कहते हैं कि भगवान के भक्तों को और अयोध्या के नागरिकों को भी यह प्रतीत हुआ कि भगवान राम के संग की अपेक्षा भरत का संग अधिक कल्याणकारी है। भगवान के दर्शन की अपेक्षा भक्त का, संत का दर्शन अधिक कल्याणकारी है। बात भी ठीक है। क्यों? बोले, भगवान राम को देखें, तो भगवान राम दिखाई देते हैं, पर भरत को देखें, तो भरत तो दिखाई देते ही है, भरत के हृदय में श्रीराम भी दिखाई देते हैं। भरत के हृदय में जो राम दिखाई देते हैं, वे सचमुच भक्तों के परम धन श्रीराम हैं। इसीलिए महर्षि भरद्वाज यह कहते हैं कि भरत आश्चर्य तो यह है कि राम भक्तों को राम की ओर देखना चाहिए, पर राम के भक्त राम को छोड़कर तुम्हारे यश चन्द्रमा के प्रेमी बन गये, जो संसार में दिखाई नहीं देता। **(क्रमश:)**

साधुओं के पावन प्रसंग (५१)

स्वामी धर्मेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१९८२ ई. में अमेरिका से भारत आकर मैं काशी में कई दिनों तक था। उस समय कई वृद्ध संन्यासियों का साक्षात्कार किया और उनकी स्मृतिकथा को कैसेट में टेप करके रखा। उसी टेप से यह मूल्यवान स्मृतिकथा लिखना हुआ। १९/०८/१९८२ को **स्वामी धर्मेशानन्द (धीरेन महाराज) (१८९९-१९९४)** से काशी अद्वैत आश्रम में प्रश्न करके उनकी स्मृतिकथा को टेप किया। वे श्रीम के घनिष्ठ सान्निध्य में आये थे और ठाकुर के अन्यान्य शिष्यों के साथ भी निवास किये थे। पुराने उद्बोधन पत्रिका में उनका 'श्रीम समीपे' पढ़ा था। इसीलिए मैंने उनको श्रीम के सम्बन्ध में बोलने हेतु अनुरोध किया।

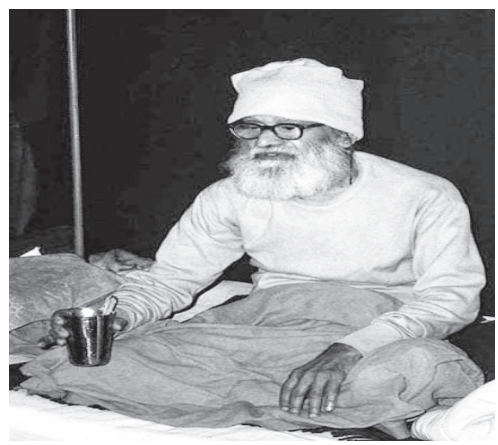

स्वामी धर्मेशानन्द

श्रीम (महेन्द्रनाथ गुप्त) की स्मृति

१९२१-२२ ई. में मैं पहली बार श्रीम के पास गया। वे मॉर्टन इन्स्टिट्यूट, अमहर्स्ट स्ट्रीट (अब राममोहन सरणी) के चार मंजिले पर रहते थे। इसके पूर्व सुरेन बाबू से लेकर मैंने श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का चतुर्थ भाग पढ़ा और बहुत आनन्दित हुआ था। उन्होंने मुझसे कहा, ''इस ग्रन्थ के लेखक अभी भी जीवित हैं।'' तत्पश्चात् एक दिन सन्ध्या समय हम दोनों श्रीम के पास गये। वे कुर्सी पर बैठे थे और हम दोनों बेंच पर बैठ गये। आषाढ़ का महीना था। रथयात्रा के कई दिनों के बाद का दिन था। श्रीम पुरी के श्रीजगन्नाथ देव के महाप्रसाद के माहात्म्य का गुणगान करने लगे। इस प्रसाद को ठाकुर ग्रहण करते थे। श्रीम भी उसे नित्य ग्रहण करते थे। उन्होंने हम सभी को वह प्रसाद (महाप्रसाद) देकर कहा, ''यह प्रसाद ग्रहण करने से भक्ति होती है।'' मैं उस समय महाविद्यालय का छात्र था और ब्राह्मसमाज में भी जाता था। सभी बातों पर विचार करता था। मुझे प्रसाद में कुछ भी विश्वास नहीं था। मैंने श्रीम से कहा, ''हाँ, यदि कोई विश्वास करके ग्रहण करता है, तो भक्ति होगी।'' उन्होंने कहा, ''ठाकुर ने कहा है, 'यह प्रसाद खाने से भक्ति होगी।' '' मैंने कहा, ''वह कैसे होगी?'' मेरी तर्कयुक्ति सुनकर श्रीम ने कहा, ''यदि तुम नहीं जानते हुए भी विष खाते हो, तो तुम्हारी मृत्यु होगी। देखो, सभी वस्तु में एक गुण रहता है।''

तत्पश्चात् उन्होंने गम्भीर होकर मेरी ओर से मुँह फिराकर दूसरे भक्तों की ओर देखते हुए कहा, ''देखिए, ये युवक ठाकुर की बातों पर विश्वास नहीं कर रहे हैं।'' सभी निस्तब्ध थे। सुरेन बाबू मेरी ओर देखने लगे। मैं आश्चर्यचकित होकर उनसे प्रसाद का कण ग्रहण किया। तदनन्तर मैं प्राय: ही श्रीम के पास जाया करता था।

१९२१ ई. में स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज का बेलूड़ मठ में दर्शन किया हूँ। १९२४ ई. से मैं विवेकानन्द सोसायटी में था और कोलकाता विश्वविद्यालय में पढ़ाई करता था। वहाँ से ब्रह्मचारी तारक के साथ मैं श्रीम के पास गया। हमें देखकर श्रीम ने तारक से पूछा, ''तुम क्या करते हो?'' उसने कहा, ''मैं सोसायटी के लिए चन्दा संग्रह करता हूँ। वहाँ पर संन्यासिगण आकर सप्ताह में दो कक्षा लेते हैं, भजनादि और रामनाम संकिर्तन होता है। मैं वह सब व्यवस्था

करता हूँ।'' तदुपरान्त श्रीम ने मुझसे पूछा, ''तुम क्या करते हो?'' मैंने कहा, ''मैं प्रात: पूजा करता हूँ, सन्ध्या आरती करता हूँ और दो घण्टे पुस्तकालय में कार्य करता हूँ।''

श्रीम ने सुनकर कहा, ''वाह ! तुम्हारा कार्य तो बहुत अच्छा है ! तुम सुगन्धित चन्दन घिस रहे हो, फूल से ठाकुर को सजा रहे हो। ठाकुर पवित्रतम हैं। उन्हीं ठाकुर की तुम पूजा कर रहे हो, सब कुछ निवेदन कर रहे हो। तुम्हारा यह कार्य अच्छा है। यह कार्य तुम नहीं छोड़ना। पूजा के द्वारा शीघ्र ही भगवान का दर्शन होता है।'' यह कहकर उन्होंने मुझे बहुत उत्साहित किया।

तत्पश्चात् मैंने निश्चय किया कि संन्यासी होऊँगा और बेलूड़ मठ में सम्मिलित होऊँगा। मेरी इच्छा जानकर श्रीम ने कहा, ''देखो, साधु होने पर मृत्यु का चिन्तन करना होगा। कठोपनिषद् में है कि नचिकेता मृत्यु के राजा यमराज के पास मरने के उपरान्त क्या होता है जानने के लिए गये थे। उन्होंने यमराज से मृत्युहीन अमर आत्मा के विषय में जाना था। अभी से ही तुम प्रतिदिन श्मशान में जाना और वहाँ पर क्या देखा मुझे बताना। मैं अनेक दिन श्मशान गया था। कितनों की अन्तेष्टि हुई तथा श्मशान का वातावरण इत्यादि सभी विवरण उनको देता था। जो भी हो, एक दिन किसी कारण से नहीं गया। यह जानकर श्रीम ने कहा, ''नहीं, यह अच्छा नहीं हुआ। तुमको प्रतिदिन जाना चाहिए।'' मैंने कहा, ''मैं उस दिन अपने एक मित्र के यहाँ गया था। उसके पड़ोस में कोई मर गया था। मैंने उनलोगों का रोना सुना।'' यह बात सुनकर श्रीम ने कहा, ''हाँ, यह भी एक अच्छा अनुभव है। देखो, मृत्यु का चिन्तन नहीं करने से मृत्यु के बाद ईश्वर हैं, ऐसा समझ में नहीं आता।'' इस प्रकार उन्होंने मेरे भीतर वैराग्य का भाव प्रविष्ट कराया।

श्रीम (महेन्द्रनाथ गुप्त)

१९२६ ई. में मैं कोलकाता से जाकर देवघर विद्यापीठ में सम्मिलित हुआ। वहाँ पर चार वर्ष था। वहाँ पर मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं होने के कारण १९३० ई. में मैं बेलूड़ मठ में महापुरुष महाराज के पास आया। उन्होंने मुझे काशी जाने के लिए कहा। काशी जाने के पूर्व मैं प्राय: ही श्रीम को देखने जाया करता था। उसी समय प्रयागराज में कुम्भमेला हुआ। श्रीम ने मुझसे कहा, ''धीरेन, तुम कुम्भ-मेला में जाओ। अच्छा रहेगा। देखोगे कि साधुओं का एक समाज है। संसार के प्रति आकर्षण कम हो जायेगा। वहाँ पर विभिन्न सम्प्रदाय के संन्यासियों का समागम होता है। एक महीना से अधिक समय तक प्रतिदिन वहाँ पर साधु-समाज, भगवत्-गुणगान, शास्त्रचर्चा, शोभायात्रा, भण्डारा देखकर आनन्द पाओगे और बहुत कुछ जान सकोगे। तदुपरान्त वह सब वर्णन मुझे लिखना।''

तत्पश्चात् बेलूड़ मठ के अनेक संन्यासियों के लिए एक रेल का डिब्बा आरक्षित किया गया था। मैं उनलोंगो के साथ कुम्भ-मेला गया और गंगा-यमुना के संगम के पास एक कैम्प में रहा। मैंने कुम्भ-मेला का वर्णन लिखकर एक विस्तृत पत्र श्रीम को भेजा था। कुम्भ-मेला के पश्चात् काशी गया और वहाँ से तपस्या करने के लिए अलमोड़ा गया। अलमोड़ा के कुटीर का निर्जनवास और वातावरण के सम्बन्ध में श्रीम को एक पत्र लिखा। उन्होंने उत्तर में लिखा था : ''उस निर्जन हिमालय में तुम एकाग्र चित्त से ठाकुर का चिन्तन करके समय व्यतीत कर रहे हो। कितना सुन्दर वातावरण, इच्छा होती है कि इस वृद्धावस्था में उस कुटीर में रहकर तपस्या करूँ। 'तपस्या चीयते ब्रह्म।' किन्तु एकाकी निर्जनवास में 'साधु सावधान' ठाकुर का यह महावाक्य सदा स्मरण करना।''

इसके एक वर्ष के पश्चात् मैं कोलकाता वापस आकर श्रीम का दर्शन किया। उन्होंने कहा, ''आहा ! तुम्हारा कुम्भ-मेला का क्या ही वर्णन था ! मुझे सर्वप्रथम तुम्हारा ही पत्र मिलता है। देखो, भारतवर्ष जैसा सुन्दर देश इस संसार में और कहीं पर भी नहीं है। यहाँ पर साधु-सन्तगण तपस्या करते हैं और भिक्षा द्वारा जीवन-यापन करते हैं। लोग साधुओं को भिक्षा देते हैं, जिससे वे ईश्वर के ध्यान में जीवन व्यतीत कर सकें।''

हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) स्वयं के जीवन में गीता का अभ्यास करके उसका सार तत्त्व का अनुभव करते थे। वे मूर्तिमान गीता थे। वे शुकदेव के जैसा शुद्ध और पवित्र थे। महापुरुष महाराज ने मुझे गीता के इस श्लोक का ध्यान

करने के लिए कहा था –

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।।

(गीता ९/१८)

अर्थात् मैं ही कर्मफल, पोषणकर्ता, नियन्ता, शुभाशुभ का द्रष्टा, स्थिति-स्थान, रक्षक, प्रत्युपकार-निरपेक्ष उपकारक, सृष्टिकर्ता, प्रलयकर्ता, आधार, लयस्थान, अविनाशी आदि कारण हूँ।

अलमोड़ा में रहते समय मैं प्रतिदिन गीता के नवम और दशम अध्याय का पाठ करता था। इन दो अध्यायों में भक्ति की अनेक बातें हैं, किन्तु मुझे उस प्रकार के भाव-भक्ति का अनुभव नहीं होता था। मैं ठाकुर से बहुत प्रार्थना करता था। तदुपरान्त सोचा महापुरुष महाराज हैं और श्रीम अभी भी जीवित हैं। इनका सत्संग दुर्लभ है। उनके पास ही जाता हूँ। साधुजीवन में सत्संग बहुत आवश्यक है।

जो भी हो, ठाकुर ने मेरी प्रार्थना सुनी। वापस आने के उपरान्त काशी में तीन-चार महीने रहने के बाद अक्तूबर महीने में स्वामी विरजानन्द जी महाराज का एक पत्र पाया। उस समय वे रामकृष्ण संघ के महासचिव थे। उन्होंने लिखा : ''उद्बोधन पत्रिका के लिए एक सह-सम्पादक की आवश्यकता है। तुम अविलम्ब यहाँ पर आ जाओ।'' मुझे बहुत आनन्द हुआ। उद्बोधन में रहने की मुझे बहुत इच्छा थी, क्योंकि बेलूड़ मठ में मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। उद्बोधन में रहते समय मैं सप्ताह में तीन-चार दिन श्रीम के पास जाता था।

श्रीम मॉर्टन स्कूल के चौथे तल्ले के एक घर में रहते थे। उस घर में एक चौकी, अनेक पुस्तकों की आलमारी, दीवार में ठाकुर, श्रीमाँ और स्वामीजी का चित्र तथा एक और ठाकुर द्वारा व्यवहृत कुछ वस्तुएँ थीं।

श्रीम के घर की विभिन्न वस्तुएँ

एक दिन उनका दर्शन करने गया। वे चौकी पर बैठे हुए थे। मेरे बेंच पर बैठने के बाद उन्होंने मुझसे उच्चारण करने के लिए कहा, 'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।' – अर्थात् असत् से मुझे सत्य की ओर ले चलो। अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो। श्रीम प्रार्थना पर बहुत जोर देते थे और कहते थे, ''Prayer is the golden link between the short life and eternal life. अर्थात् प्रार्थना क्षुद्र जीवन और अमर जीवन के बीच एक सोने की कड़ी है। यह short life ईश्वर को देना होगा। बहुत अधिक प्रार्थना करना। देखो, उनकी कृपा के बिना कुछ नहीं होता।''

श्रीम मुझे बहुत प्रेम करते और ठाकुर की बहुत-सी बातें बताया करते थे। उनके घर के सामने एक बड़ी छत और चारों ओर ऊँची दीवार थी। आसमान के अतिरिक्त दूसरा और कुछ भी दिखाई नहीं देता था। उसी छत पर उन्होंने विविध प्रकार के फूल, तुलसी इत्यादि लगाकर ऋषियों के जैसा तपोवन तैयार किया था। प्रतिदिन सन्ध्या समय भक्तों के आने पर उनलोंगो के साथ वे वहीं ध्यान करते थे। एक बार मैं गलती से आसन वहीं छोड़कर उद्बोधन आ गया था। उसके अगले दिन दो बजे गोपनीय ढंग से आसन लाने गया। श्रीम ने मुझे देखकर मेरा हाथ पकड़कर अपनी चौकी के ऊपर बैठाया। तदुपरान्त उन्होंने कहा, ''तुम्हारा ही चिन्तन कर रहा था। मुझे तुमसे कुछ बातें करनी है।'' मैंने कहा, ''मुझे अभी ही वापस जाना होगा। उद्बोधन में तीन बजे स्वामी वासुदेवानन्द जी छान्दोग्य उपनिषद् पर कक्षा लेते हैं, उसमें मुझे उपस्थित रहना होगा।'' उन्होंने कहा, ''देखो, अध्ययन करके ईश्वर के पास जाना royal path (राजमार्ग) है। यह युग-युग से है। देखो, **ठाकुर को पकड़ो। उनको पकड़े हुए स्वाध्याय करो। वे अभी ही आये है। यह स्वर्णिम अवसर है। वे साक्षात् ईश्वर हैं। उनके चरणों में वेद-वेदान्त पड़ा हुआ है। उनको पकड़ने से अभी ही यह सब ज्ञान हो जायेगा। बहुत जल्दी ही गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाओगे, नहीं तो बहुत विलम्ब हो जायेगा, बहुत विलम्ब हो जायेगा।''**

किन्तु मुझे उस समय शास्त्रों के प्रति बहुत आसक्ति

थी। सभी कहते थे कि शास्त्र नहीं पढ़ने से ज्ञान नहीं होगा। मैं श्रीम से हाथ छुड़ाकर उद्बोधन वापस आ गया। मैंने निर्बोध जैसा उनके प्रति अश्रद्धा प्रकट की और उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया। अभी लगता है कि जैसे वे मुझे कुछ आध्यात्मिक तत्त्व बताना चाह रहे थे।

तत्पश्चात् श्रीम से कहा था, ''मैं ध्यान करने में सक्षम नहीं हूँ। आप मेरे लिए कुछ कर दीजिए।'' तब उन्होंने कहा, ''देखो, यदि केवल शास्त्र लेकर रहोगे, तो गहन आध्यात्मिक सत्य को समझने में सफल नहीं हो सकोगे। ईश्वर से प्रार्थना ही वास्तविक बात है। तुम जब वह नहीं कर सकते हो, तो केवल ईश्वर की चर्चा करना ही तुम्हारी साधना होनी चाहिए। **'कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।'** (गीता १०/९) अर्थात् मेरा भक्त नित्य मेरा तत्त्वगुण और लीलाकथा की चर्चा करके तुष्ट होते हैं और आनन्द प्राप्त करते हैं। **'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।** (गीता ३/११) अर्थात् इस प्रकार परस्पर सन्तोष साधना द्वारा मंगल प्राप्त करना। गीता के इन बातों का पालन करो। भक्तों के साथ ईश्वर की कथा कहते-कहते तुमको भक्ति होगी। केवल उनके बारे में ही चिन्तन करना।''

श्रीम मेरे परम हितैषी और मंगलाकांक्षी थे। एक दिन एक व्यक्ति के साथ मेरी बहस हुई। दोपहर भोजन के उपरान्त मैं उनके पास सान्त्वना पाने के लिए गया। मुझे देखकर उन्होंने स्नेह से मुझे बुलाया, ''आओ, आओ।'' मुझे बेंच पर बैठने के लिए कहा। तत्पश्चात् मेरे हाथ में कई पर्ची देकर कहा, ''यह देखो, देवासुर संग्राम चल रहा है। एक दल दूसरे दल की निन्दा कर रहा है। कुछ आलोचकों ने टिप्पणी की है कि 'बेलूड़ मठ पर बाघ कूद पड़ा है।' एक बात कहकर श्रीम हो-हो करके हँसने लगे। उनकी हँसी देखकर मैं भी हँस पड़ा। मुझे मेरी दुख की बातें बोलनी ही नहीं पड़ी। वे ठाकुर के घनिष्ठ पार्षद थे। बालक जैसी उनकी हँसी से मेरा दुख चला गया।

श्रीरामकृष्ण देव का कमरा, दक्षिणेश्वर

अन्य एक दिन मैंने उनसे कहा, ''ठाकुर जो भगवान हैं, उस पर मेरा विश्वास तो नहीं हो रहा है।'' श्रीम ने कहा, ''क्या कहते हो? इतना पढ़ने के बाद, ठाकुर की सन्तानों का संग करके भी ठाकुर भगवान हैं, यह विश्वास नहीं आया? सातों काण्ड रामायण पढ़ने के बाद तुम बोल रहे हो कि सीता किसकी भार्या थी? जो भी हो, कभी-कभी मन की ऐसी अवस्था होती है। मुझे भी ऐसा हुआ था। स्मरण हो रहा है कि १८८२ या १८८३ ई. के एक दोपहर में भोजन के उपरान्त ठाकुर बिस्तर पर सोये हुए हैं। मैं पाँवपोश के ऊपर बैठकर उनके पैरों पर हाथ फेर रहा हूँ और सोच रहा हूँ – ये सामान्य मनुष्य की तरह भोजन करते हैं, घूमते-फिरते हैं, सोते हैं, सामान्य मनुष्य की तरह व्यवहार करते हैं – ये कैसे जगत के सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्ता हो सकते हैं? ये क्या मनुष्य के रूप में मनुष्य के ऊपर कृपा करने के लिए आये हैं – जगत का उद्धार करने के लिए? यह कैसे सम्भव है? ये तो देहधारी मनुष्य हैं। मैं ऐसा सोच ही रहा था कि ठाकुर अकस्मात् उठकर बैठ गये और कहा, 'मास्टर, तुम क्या सोच रहे हो?' तत्पश्चात् अपने हृदय पर हाथ रखकर कहा, **'यहाँ सबकुछ है। इसका चिन्तन करने से ही तुम सबकुछ प्राप्त कर लोगे ! इसका चिन्तन करने से ही तुम सबकुछ प्राप्त कर लोगे ! इसका चिन्तन करने से ही तुम सबकुछ प्राप्त कर लोगे !'** यह बात तीन-तीन बार कहकर वे समाधिस्थ हो गये।

''बहुत देर तक समाधि के पश्चात् वे निम्नभूमि पर आकर माँ-जगदम्बा के साथ वार्तालाप करने लगे, 'माँ, मैं तो कुछ भी नहीं जानता। तुमने जैसा बोलवाया, वैसा ही बोला। मैं तो बालक हूँ। माँ, क्या मैंने कुछ गलती की? तुम ही मेरे मुँह से बोली।' देखो, इससे ही समझा कि ठाकुर भगवान हैं। माँ-जगदम्बा और ठाकुर एक हैं।''

श्रीम को ध्यान देकर देखा हूँ कि उनकी सत्य के प्रति बहुत निष्ठा थी। कभी भी उनको क्रोध करते हुए नहीं देखा। फिर भी किसी के द्वारा वचन देने पर, उसकी रक्षा नहीं करने पर वे नाराज होते थे। एक दिन एक भक्त के साथ कहीं

जायेंगे, किन्तु वह भक्त कोई खबर भी नहीं दिया और आया भी नहीं। तब श्रीम ने बहुत क्रोध प्रकट किया और कहा, ''सत्य के प्रति निष्ठा नहीं रहने से कुछ भी नहीं होगा। ठाकुर सत्यस्वरूप थे।'' उनकी यह बात मुझे अभी भी याद है।

श्रीम का रहन-सहन बहुत कठोर था। वे स्वावलम्बी थे। स्वयं का भोजन वे एक कूकर में तैयार करते थे। उसमें भात और सब्जी उबालते थे। दूध पीते थे। कहते – दूध पीने से मेधा बढ़ती है। रात्रि में एक नौकर को भेजकर एक पावरोटी मँगाते थे। उसमें से थोड़ी-सी सब्जी और बाकी दूध के साथ खाते थे। भक्तगण सन्देश, रसगुल्ला, मिठाई लाते थे। मेरे जाने पर मुझे भी कुछ खाने के लिए देते। एक दिन मुझे सन्देश खाने के लिए दिया। मैंने कहा, ''मुझे खाने की इच्छा नहीं है।'' उन्होंने हँसते-हँसते हुए कहा, ''देखो, अरुचि में रुचि के लिए सन्देश की सृष्टि और तुम्हें उसी सन्देश में अरुचि। अच्छा रहने दो, तुमको खाने की आवश्यकता नहीं।''

मैं सोचने लगा कि श्रीम मुझे कितना स्नेह से खिलाते हैं और मैं उनको कुछ भी नहीं खिला पाया। श्रीम अन्तर्यामी थे। वे मेरे मन की बात समझ गये। सन्ध्या के बाद सभी भक्तों के चले जाने के बाद उन्होंने मुझसे कहा, ''देखो, मुझे बीमारी हुई है। शरीर उतना ठीक नहीं है। दिन में तो भोजन बना कर खाया। किन्तु रात्रि में क्या खाया जाये, बोलो तो?'' मैंने कहा, ''मुझे जब टायफायड हुआ था, तब मैं मिल्क-रोल पावरोटी दूध के साथ खाता था। यह बहुत जल्दी पच जाता है।'' उन्होंने कहा ''मुझे वह लाकर कौन देगा?'' मैं एक मिल्क-रोल पावरोटी चाय दूकान से खरीद कर ले आया। अच्छी दूकान में से नहीं ला सका। उन्होंने पावरोटी पर गंगा जल छिड़ककर दूध के साथ उसे खाया।

उसके अगले दिन मार्टन इन्स्टिट्यूट पहुँचकर देखा कि श्रीम नीचे के तल्ला पर एक गृहस्थ भक्त के साथ बातें कर रहे हैं। मुझे देखकर उन्होंने दूर के एक बेंच पर बैठने के लिए कहा। तदनन्तर उस भक्त से वार्तालाप समाप्त करके वे मुझे चार मंजिले पर उनके कमरे में ले गये। सीढ़ी से ऊपर उठते समय उन्होंने मेरी जेब में पावरोटी देखा था। मैंने वह उनको दिया। ऊपर मंजिल में बहुत सारे भक्त उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उस दिन उन्होंने विविध प्रकार का ईश्वरीय प्रसंग सुनाया। तत्पश्चात् रात्रि के नौ बजे सबके चले जाने के बाद उन्होंने मुझे रुकने के लिए कहा। उस दिन किसी भक्त ने माँ जगद्धात्री का विविध प्रकार का प्रसाद लाया था। उन्होंने वह प्रसाद मुझे दिया। तदुपरान्त मेरे द्वारा दिये गये पावरोटी के ऊपर थोड़ा-सा गंगाजल छिड़ककर दूध के साथ खाकर कहा, ''बहुत अच्छा पावरोटी है।'' इस प्रकार मैंने श्रीम का बहुत प्रेम-स्नेह प्राप्त किया है।

श्रीम चाहते थे कि संन्यासी सदैव ईश्वर के ऊपर निर्भर रहें, किसी गृहस्थ के ऊपर नहीं। मैं उद्बोधन, बागबाजार से तीन-चार मील पैदल चलकर श्रीम के पास जाता था। सुखलाल बाबू नामक एक भक्त मुझे ट्राम के भाड़ा हेतु एक आना देते थे। एक दिन मुझे वापस आना था, किन्तु श्रीम सुखलाल बाबू के साथ बातें करते ही रहे। तब मैं पैदल ही वापस आ गया।

एक बार स्वामी विश्वानन्द बम्बई से एक धनी सेठ को श्रीम के पास लेकर गये। उन्होंने उनको ईश्वर की अनेक बातें बतायी। तत्पश्चात् जब वे लोग जाने लगे, तब श्रीम ने विश्वानन्द महाराज से कहा, ''देखो, साधु के पीछे-पीछे भक्तों का जाना अच्छा है, किन्तु धनी भक्त के पीछे-पीछे साधु का जाना उचित नहीं। यदि तुम्हारे प्रति उनकी श्रद्धा न रहे, तो तुम्हारी बातों के प्रति भी उनकी श्रद्धा नहीं रहेगी। ईश्वर के ऊपर निर्भर करना, धनिकों के ऊपर नहीं।''

एक दिन प्रात: ११ बजे श्रीम के पास गया था। वे उस समय खुला बाथरूम में बैठकर बालटी के जल से स्नान कर रहे थे। मैंने देखा कि भारी बालटी को उठाते हुए उनको बहुत कष्ट हो रहा है। एक लोटा को बालटी में डुबाकर जल निकालकर स्नान कर रहे हैं। मैंने कहा, ''आप इतना कष्ट उठाकर स्नान क्यों कर रहे हैं?'' उन्होंने कहा, ''और क्या करूँगा? यहाँ पर मुझे देखभाल करने वाला कोई नहीं है।'' मैंने कहा, ''आप बेलूड़ मठ में जाकर रहिए सभी आपको बहुत अच्छी तरह से रखेंगे।'' उन्होंने मुझे धमकी देते

हुए कहा, ''क्या कह रहे हो? साधु की सेवा लूँगा? साधु कितना बड़ा होता है।

'मेरुसर्षपयोर्यद्यत् सूर्यखद्योतयोरिव।
सरित्सागरयोर्यद्यत् तथा भिक्षुगृहस्थयोः।।'

मेरु और सरसों में जो भेद है, प्रचण्ड सूर्य और जुगनु में जो भेद है, अनन्त समुद्र और छोटा गोष्पद में जो भेद है, संन्यासी और गृहस्थ में भी वही भेद है। गृहस्थ कभी भी संन्यासी से सेवा नहीं लेगा।'' इसी प्रकार वे हमें संन्यासी और गृहस्थ के आदर्श दिखाते थे।

श्रीम ईसा मसीह की बातें बहुत कहते थे। उन्होंने कहा था, ''कृष्ण जिस प्रकार गौचारण करते थे, ईसा भी उसी प्रकार भेड़-चारण करते थे। एक बार एक भेड़ का शावक भूल गया। बहुत खोजने के बाद भेड़-शावक को खोजकर गोद में उठाकर ले आ रहे हैं; तब अन्यान्य भेड़ें उनके पीछे आने लगीं। ईसा मसीह ने कहा, ''देखो, भेड़ों के बीच कितना प्रेम है ! यह भेड़-शावक मार्ग से भटक गया था। जो ईश्वर के ऊपर निर्भर करते हैं, ईश्वर पथ-भ्रमित होने से रक्षा करते हैं। 'A good shepherd goes to search for a sheep gone astray.' इसीलिए ईश्वर के ऊपर निर्भर करो; फिर तुमलोगों को कोई भय नहीं।''

Don't sell your birthright. अर्थात् अपने जन्मसिद्ध अधिकार को मत बेचो। अपने birthright – जन्मसिद्ध अधिकार की सदा रक्षा करना। इस प्रसंग में श्रीम ने ईसा मसीह का एक दृष्टान्त बताया था, ''एक धनी व्यक्ति के दो पुत्र विदेश में व्यापार करने के लिए गये। मरुभूमि के रास्ते में छोटे लड़के का जल और भोजन सब समाप्त हो गया। वह बड़े भाई के पास जाकर कहा, ''मुझे जल और भोजन दो।'' तब बड़े भाई ने कहा, ''मैं जल और भोजन दे सकता हूँ, किन्तु तुम्हारा birthright अर्थात् पैतृक सम्पत्ति का अर्धांश मुझे देना होगा।' वे बहुत धनी व्यक्ति थे।''

श्रीम ने हमलोगों से पूछा, ''तब क्या छोटा लड़का अपना पैतृक सम्पत्ति उसे दे देगा?'' हमलोगों ने कहा, ''पैतृक सम्पत्ति नहीं देने से तो वह बिना भोजन-जल के मर जायेगा।'' श्रीम ने कहा, ''तब तो छोटा भाई को सदा के लिए बड़े भाई का दास होकर रहना होगा। नहीं, birthright देने से मरना अच्छा है। हमलोगों का जन्मसिद्ध अधिकार भगवान के पास है। हमलोगों का वास्तविक स्वभाव अविनाशी आत्मा है और उसे हमलोग अनुभव करेंगे। देखो, विवेक-वैराग्य ही सच्ची वस्तु है। भोजन-वस्त्र लेकर उसको भूल न जाये। मृत्युपर्यन्त भगवान से आत्म-ज्ञान के लिए प्रार्थना करनी होगी, याचना करनी होगी।''

श्रीम ईसा मसीह का एक और दृष्टान्त कहते थे, 'Follow me' अर्थात् मेरा अनुसरण करो। एक बड़ा व्यवसायी था। वह अपना पूरा व्यवसाय बेचकर एक (pearl) मुक्ता खरीदा। उस मुक्ता का मूल्य करोड़ों रुपया था। वह चाहता तो पुनः अपना व्यवसाय कर सकता था। जानते हो वह मुक्ता क्या है? वह है भक्ति। देखो, त्याग नहीं होने से भक्ति नहीं होती। उसी प्रकार सम्पूर्ण मन एकाग्र करके ईश्वर को देने से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।'' इस प्रकार वे विभिन्न कहानियों के द्वारा हमलोगों को शिक्षा देते थे।

मैं जब उद्बोधन में था, तो कभी-कभी बेलूठ मठ में महापुरुष महाराज के पास जाता था। श्रीम ने मुझसे कहा था, ''**गुरुवाक्य पर विश्वास और गुरुसेवा आध्यात्मिक मार्ग के लिए विशेष आवश्यक है।** गुरु जैसा बोलते हैं, वैसा ही करना। वे तुम्हारी प्रवृत्ति को जानते हैं। इसलिए जो मार्ग वे बतायेंगे वही तुम्हारे लिए श्रेयस्कर होगा।'' १९२५ ई. में मुझे महापुरुष महाराज से दीक्षा प्राप्त हुई। तत्पश्चात् १९२८ ई. में ब्रह्मचर्य और १९३३ ई. में संन्यास मिला। दीक्षा के बाद मैं समझा, दीक्षा का मूल उद्देश्य हुआ – भगवान को अपना बना लेना। भगवान और भक्त के बीच कोई भेद नहीं है – अनादिकाल का सम्बन्ध है। वे अन्तर्यामी हैं। वे हमारा अन्दर-बाहर सब जानते हैं। श्रीम कहते थे, ''गुरु और इष्ट धर्मजीवन के मुख्य सम्बल हैं। गुरु बाजीगर हैं, जो क्षणभर में तुम्हारे हजारों गाँठवाले बन्धन को खोल सकते हैं।''

श्रीम वास्तव में ऋषि थे। मार्टन इन्स्टिट्यूट की छत के ऊपर फूल, पेड़-पौधा लगाकर कुंज बनाया था, जिससे असीम नीला आकाश को छोड़कर और कुछ नहीं दिखे। इस प्रकार छत को आश्रम करके ऋषि जैसा निवास करते थे।

जैसे ही सन्ध्या होती, श्रीम शरीर के रोम की जाँच करते थे। कहते, ''देखिए, अभी साधन-भजन का समय है। **'अन्य वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः' –** अभी सब बातें छोड़कर करके आत्मज्ञान को जानो, यही मोक्षप्राप्ति का उपाय है। ठाकुर के पास कोई घड़ी नहीं थी। वे शरीर के रोम की जाँच करके देखते कि सन्ध्या हुई की नहीं।''

मैंने ठाकुर के अन्यान्य शिष्यों का भी दर्शन किया है। मैं एक दिन स्वामी अभेदानन्द जी महाराज का दर्शन करने गया। वे उस समय ध्यान समाप्त करके भ्रमण कर रहे थे। मैंने उनको प्रणाम करके आशीर्वाद के लिए प्रार्थना किया। मैंने कहा, ''महाराज, मैं पुरी जा रहा हूँ। आशीर्वाद दीजिए जिससे मुझे भक्ति हो।''

स्वामी अभेदानन्द जी महाराज

स्वामी अभेदानन्द जी महाराज ने कहा, ''देखो, बहुत घूमने से भक्ति नहीं होती। एक स्थान पर बैठकर जप-ध्यान करो और ठाकुर से प्रार्थना करो।''

और एक बार सारगाछी में स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज के पास गया था। वहाँ पर बहुत ज्वर हुआ। तत्पश्चात् कई दिनों के बाद ज्वर ठीक होने पर अखण्डानन्दजी महाराज ने मुझसे कहा,

''मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।।

(गीता २/१४)

''देखो, भगवान ने कहा हैं – सहन करो। व्याधि को शरीर का अतिथि समझना। अतिथि घर में आता है और चला भी जाता है। वह सदा के लिए नहीं रहता। मन में दृढ़ता रखना। व्याधि को यदि अतिथि मानोगे, तो अधिक कष्ट नहीं होगा।''

भाई भूपति

कोलकाता छात्रावस्था में मैं अपने मित्र सुरेन्द्र के साथ ठाकुर के गृहस्थ शिष्य भाई भूपति के पास गया था। वे गृहस्थ होकर भी सदैव एक दिव्य भाव में रहते थे। दोनों हाथ उठाकर सभी को आशीर्वाद देते थे। कभी-कभी वे आठ-दस घण्टा 'हरि' 'हरि' जपते थे। उनके कुछ शिष्य थे। परीक्षा के उपरान्त मैं भाई भूपति के पास उनका test करने के लिए गया कि वे मन की बात जानते हैं कि नहीं। मैंने मन में निश्चय किया कि यदि वे कहेंगे, 'हाँ success होगा' तभी मानूँगा। भाई भूपति ने अकस्मात् कहा, ''हाँ success होगा''। इस घटना ने मेरे भीतर ईश्वर के ऊपर विश्वास पैदा कर दिया था।

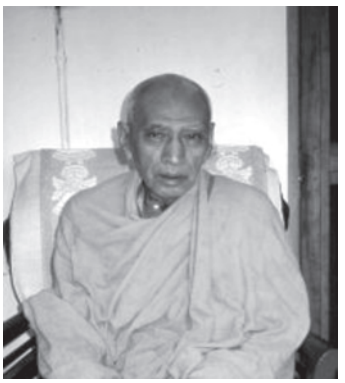
स्वामी कैलाशानन्द जी महाराज

स्वामी कैलासानन्द जी महाराज ने कहा था, उन्होंने एक बार भाई भूपति से पूछा था, ''ठाकुर कैसे खुश होते हैं?'' उन्होंने उत्तर दिया, ''किसी के द्वारा कामिनी-कांचन का त्याग करने से ही ठाकुर बहुत खुश होते थे।'' **(क्रमशः)**

इन पाँच कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती। (१) अभिमान (२) क्रोध (३) प्रमाद (४) रोग और (५) आलस्य।

आलसी सुखी नहीं हो सकता, निद्रालु विद्याभ्यासी नहीं हो सकता, ममत्व रखनेवाला वैराग्यवान नहीं हो सकता और हिंसक दयालु नहीं हो सकता।

सांसारिक वस्तुओं को पाशरूप जानकर मुमुक्षु को बड़ी सावधानी से फूँक-फूँक कर पाँव रखना चाहिए। जब तक शरीर सशक्त है, तब तक उसका उपयोग संयम, धर्म की साधना के लिए कर लेना चाहिए। जब वह बिलकुल अशक्त हो जाय तब बिना किसी मोह के मिट्टी के ढेले के समान उसे त्याग देना चाहिए।

जब तक बुढ़ापा नहीं सताती, जब तक व्याधियाँ (रोगादि) नहीं बढ़तीं और इन्द्रियाँ अशक्त (अक्षम) नहीं हो जातीं, तब तक (यथाशक्ति) धर्माचरण कर लेना चाहिए। क्योंकि बाद में अशक्त और असमर्थ देहेन्द्रियों से धर्माचरण नहीं हो सकेगा।

गुरु तथा वृद्धजनों के समक्ष आने पर खड़े होना, हाथ जोड़ना, उन्हें उच्च-आसन देना, गुरुजनों की भावपूर्वक भक्ति तथा सेवा करना विनय तप है।

– भगवान महावीर

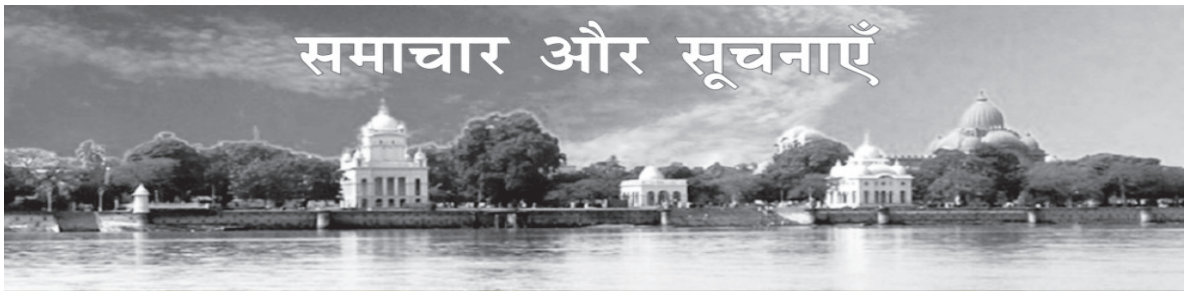

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में युवा-सम्मेलन आयोजित हुआ

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में आजादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में ६ जनवरी, २०२३ को युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें ४ शिक्षण संस्थानों के १७५ छात्र-छात्राओं और १० शिक्षकों ने भाग लिया। सम्मेलन में स्वामी प्रपत्त्यानन्द, विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ.ओमप्रकाश वर्मा, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ.बी.एल.सोनेकर जी ने युवाओं को सम्बोधित किया। आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने बच्चों को सम्बोधित किया। मंच संचालन स्वामी देवभावानन्द जी, धन्यवाद ज्ञापन स्वामी पद्माक्षानन्द जी ने किया। सभी प्रतिभागियों को फाइल, पेन, पैड और विवेकानन्द की पुस्तकें – व्यक्तित्व विकास, स्वामी विवेकानन्द राष्ट्र को आह्वान, हे भारत उठो जागो, सबके स्वामीजी और विवेकानन्द संक्षिप्त जीवनी प्रदान की गई। सबको सहभागिता प्रमाण-पत्र और अन्त में स्वादिष्ट भोजन कराया गया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के द्वारा व्यक्तित्व विकास शिविर आयोजित हुये

१२ दिसम्बर, २०२२ को आश्रम द्वारा शास. कचनाधुरवा महाविद्यालय, छुरा, जिला-गरियाबन्द में १२ बजे व्यक्तित्व विकास शिविर का आयोजन किया, जिसमें स्वामी अव्ययात्मानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द और डॉ. विनीत साहू ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया। इसमें कुल ४०४ छात्र उपस्थित थे। ३ जनवरी, २०२३ को शा.पं.जवाहरलाल नेहरू कला एवं विज्ञान स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, बेमेतरा में १२ बजे व्यक्तित्व विकास शिविर आयोजित हुआ, जिसमें स्वामी प्रपत्त्यानन्द, डॉ. बी. एल. सोनेकर और डॉ. विनीत साहू ने छात्रों को सम्बोधित किया। कुल ३६५ छात्र-छात्राओं ने भाग लिया।

२० जनवरी, २०२३ को सन्ध्या ७ बजे रायपुर आश्रम के सत्संग भवन में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ न्यासी और रामकृष्ण मठ, काशीपुर, कोलकाता के अध्यक्ष परम पूज्यपाद स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज ने भक्तों को आशीर्वचन प्रदान किया।

१४ दिसम्बर, २०२३ को **विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर** में श्रीमाँ सारदा जयन्ती का आयोजन हुआ, जिसमें रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी, डॉ. कल्पना मिश्रा और डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने श्रीमाँ सारदा के जीवन के विभिन्न पक्षों पर विचार व्यक्त किये। १ फरवरी, २०२३ को अपराह्न ४ बजे रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मठ, काशीपुर, कोलकाता के अध्यक्ष परम पूज्यपाद स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज ने 'श्रीरामकृष्ण जीवन और सन्देश पर भक्तों और छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया।

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भावप्रचार परिषद की सभा हुई

६ और ७ नवम्बर, २०२२ को मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भावप्रचार परिषद की सभा श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम, अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़) में आयोजित हुई, जिसमें स्वामी व्याप्तानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द, स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी नित्यज्ञानन्द, स्वामी यज्ञधरानन्द, स्वामी सुप्रदीप्तानन्द, स्वामी तन्मयानन्द और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने विभिन्न सत्रों में सभा को सम्बोधित किया।

महाराष्ट्र रामकृष्ण-विवेकानन्द भावप्रचार परिषद की सभा हुई

२०,२१,२२ जनवरी, २०२३ को रामकृष्ण सत्संग मंडल, गोंदिया (महाराष्ट्र) में महाराष्ट्र रामकृष्ण-विवेकानन्द भावप्रचार परिषद की वार्षिक सभा आयोजित की गयी, जिसमें स्वामी विष्णुपदानन्द, स्वामी सत्यदेवानन्द, स्वामी श्रीकान्तानन्द, स्वामी ज्योतिस्वरूपानन्द और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने विभिन्न सत्रों को सम्बोधित किया।

रामकृष्ण मठ, अहमदाबाद
ए-202/203, कल्याण टावर्स,
अल्फा वन मॉल के सामने,
वस्त्रपुर, अहमदाबाद 380054, गुजरात
ईमेल : ahmedabad@rkmm.org,
वेब : ahmedabad.rkmm.org
फोन : (079) 26303409/ +917016093126

विनम्र निवेदन

प्रिय भक्तो और मित्रो

हमें आपको यह बताते हुए खुशी हो रही है कि स्वयं स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा (पश्चिम बंगाल) द्वारा 'रामकृष्ण मठ, अहमदाबाद' को आधिकारिक रूप से उसके एक शाखा-केन्द्र के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई है ।

रामकृष्ण मठ, अहमदाबाद के भक्तों तथा अनुरागियों ने स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' के द्विविध आदर्शों को साकार रूप देने के लिए - साणंदा तालुका के लेखम्बा गाँव में 7.5 एकड़ भूमि का अधिग्रहण कर लिया है । उस स्थान पर एक भव्य रामकृष्ण मठ का निर्माण ही हमारा तात्कालिक उद्देश्य है ।

वर्तमान समय में, मठ द्वारा संचालित हो रहे आध्यात्मिक और सेवामूलक गतिविधियों के क्षेत्र को बढ़ाने और स्वामीजी के सपनों के राष्ट्र के रूप में भारत का निर्माण करने के लिए हम अपने सभी मित्रों, भक्तों, शुभचिन्तकों, ट्रस्टों और कॉर्पोरेट निकायों से हार्दिक निवेदन करते हैं कि वे निर्माण-कार्य में अधिक-से-अधिक योगदान करके इन परियोजनाओं को यथाशीघ्र पूरा करने में सहायता करें ।

'रामकृष्ण मठ, अहमदाबाद' को दिये गये सभी दान आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 80 जी के अन्तर्गत कर-मुक्त है ।

प्रथम चरण के विकास के लिए अनुमानित लागत

	रु. करोड़
01. भूखण्ड का विकास / मिट्टी भराई आदि	0.50
02. चहारदीवारी का निर्माण	1.20
03. सीमेंट-कांक्रीट की सड़क	1.00
04. वर्षा जल का प्रबन्धन	0.50
05. कार्यालय, सिक्योरिटी गार्ड तथा गार्डन स्टाफ क्षेत्र हेतु	0.30
06. साधु-निवास और अस्थाई प्रार्थना कक्ष	1.50
07. रसोईघर, भोजनालय तथा सर्विस स्टाफ रूम	0.50
08. भक्त-निवास	0.40
09. भूमि तथा उद्यान का विकास	0.50
10. जल प्रणाली तथा सीवेज निकास	0.30
11. फर्नीचर, बिजली, सौर ऊर्जा, सी.सी.टी.वी., इंटरनेट आदि।	0.50
12. चिकित्सा सेवा (मेडिकल सर्विस वैन आदि)	0.30
13. विद्युत आपूर्ति	0.20
14. अन्य विविध कार्य	0.30
प्रथम चरण का कुल अनुमानित व्यय	**रु. 8.00**

श्रीरामकृष्ण की सेवा में आपका
स्वामी प्रभुसेवानन्द
अध्यक्ष
रामकृष्ण मठ, अहमदाबाद

द्वितीय चरण : सम्भावित खर्च

श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर, सभागार, शैक्षणिक परिसर, छात्रों के लिये छात्रावास, स्वास्थ्य सुविधाएँ, विवेकानन्द संग्रहालय, सम्पूर्ण सौन्दर्यीकरण और उद्यान का विकास, साधु-निवास का अन्तिम चरण, रसोईघर, भोजनालय, सेवक-निवास और भक्तों के लिये आवास आदि।

अनुमानित लागत रु. 75 करोड़